श्वास रोग

रक्त रोग





श्वास सम्बन्धी रोग Respiratory Diseases

नासा रोग :- Diseases of the Nose:

नासा श्लेष्म कला की रचना :- नासा मार्ग में विद्यमान श्लेष्म कला की बहि:स्तर (Epithelium) Ciliated columnar Cells से बनी हुई है। इन स्तम्भाकृति या Columnar सैलों के बीच बीच में श्लेष्म सैल या Mucous Cells या Goblet Cells भी बिखरे हुये रहते हैं। इस बहिस्तर और इसकी आधार स्तर या Basement-Membrane के नीचे Mucous तथा Serous Glands की एक तह बिछी हुई है जिनकी प्रणालियां श्लेष्म कला के पृष्ठ पर खुलती हैं। इन ग्रन्थियों तथा पृष्ठ पर विद्यमान Goblet Cells दोनों के श्लेष्म द्रव (Mucus) से नासा मार्ग तर रहता है। इसीलिये बाहर से आने वाली हवा में विद्यमान धूल, धूम, Pollen आदि के कण श्लेष्म कला में पकड़े जाते हैं और इस प्रकार छनी हुई हवा फुफुस में प्रवेश करती है। श्लेष्म कला की बहिस्तर में विद्यमान रोंगटे, (Cilia) तथा श्लेष्म द्रव (Mucus) इन कणों की तह को धकेल कर, पीछे नासा पश्चिम प्रदेश (Nasopharynx) में फेंक देते हैं। जहां से धूल कण पेट में चले जाते हैं और वहां से बाहिर निकल जाते हैं।

नासिका की श्लेष्म कला के नीचे स्नायुतन्तु (Connective Tissue) से बना एक जाल है जो स्पंज के सदृश होता है। जिसके खाली स्थानों में रक्त भरा होता है। इसे Erectile Tissue of the Nose कहते हैं। इस जाल में रक्त वाहिनियां भी अधिक संख्या में होती हैं जो Sympathetic नाड़ियों के द्वारा नियंत्रित होती हैं, Inferior Turbinate के अगले पिछले सिरों तथा इसके निचले किनारे किनारे पर तथा Middle Turbinate के अगले सिरे पर जहां जहां हवा का सम्पर्क विशेष होता है, यह Erectile Tissue मोटा होता है अर्थात वहांवहां रक्त विशेष होता है। इसका लाभ यह होता है कि बाहिर से आने वाली शीतल हवा नाक में से गुजरते समय गर्म हो जाती है तथा यदि वह अधिक शुष्क हो तो वह कुछ कुछ तर भी हो जाती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि हमारा उद्देश्य नासा मार्ग में विद्यमान Cilia, Mucus, तथा Erectile Tissue को स्वस्थावस्था में रखना है या यदि ये रुग्ण हो गये हों तो इनको फिर स्वस्थ कर देना है।

या अनेक filterable viruses है (विशेषतः

Rhinoviruses हैं

तीव्र प्रतिश्याय :- Common Cold, Acute Coryza, Cold in the head

कारण :-

सर्व रोगों में यह एक अति सुलभ रोग है जो बहुत से बालकों और युवकों को वर्ष भर में दो तीन बार होता है तथा प्रतिश्याय प्रकृति के व्यक्तियों को अनेक बार होता है। इस रोग के संक्रमण का कारण एक Filterable Virus है जो रोगी के रोग की प्रारम्भिक अवस्था में छींकने, खांसने तथा थूकने से उत्पन्न छींटों के द्वारा दूसरे स्वस्थ व्यक्तियों की नासिका तथा गले की श्लेष्म कला तक पहुंचता है तथा वहां से श्लेष्म कला के नीचे की Submucous Lymphatics के द्वारा आसपास के अवयवों में संक्रमण कर जाता है। रोगी से ही नहीं पर कैरियर व्यक्तियों से भी यह Virus दूसरों में फैलता है। परीक्षकों ने बढ़ते हुये पक्षी भ्रूण (Chicken Embryo) अथवा Allantois के द्रव में इसकी खेती करके मनुष्य सदृश (Anthropoid) बन्दरों में उसे प्रविष्ट करके इसके द्वारा प्रतिश्याय रोग उत्पन्न भी किया है। इसके अतिरिक्त इसे निर्बल प्रकृति के (Susceptible) व्यक्तियों में प्रविष्ट करने पर इससे प्रतिश्याय रोग उत्पन्न होते हुये भी देखा है। यह बात बहुत कुछ सत्य ही प्रतीत होती है कि बस्तियों में प्रसरण करने वाले प्रतिश्याय रोग का कारण एक Filterable Viruses ही है। यह कितने प्रकार का है, कितने दिन तक यह रोगी में रहता है, उससे उत्पन्न प्रतिरोध्य शक्ति कितने दिन रहती है, इन विषयों में निश्चित रूप से अभी तक कुछ कहा नहीं जा सकता। इतना तो कहा जा सकता है कि प्रतिश्याय रोग प्रारम्भिक अवस्था में अधिक संक्रामक होता है तथा इसके कारण उत्पन्न प्रतिरोधक शक्ति थोड़े समय तक ही सम्भवत: ४-६ मास रहती है। इसके संक्रामक होने के कारण प्रतिश्याय रोग भीड़ भाड़ में या मेले आदि में सम्मिलित होने वाले व्यक्तियों में अधिक होता है। बाहर से आया हुआ यह Viruses भी तभी नासिका की श्लेष्म कला में रोहण कर सकते हैं, जब वहां उनके रोहण के लिये अनुकूल भूमि (Susecptibility) हो अर्थात् जब पहले से अजीर्ण, हो, मलबन्ध हो, या शरीर की जीवाणु प्रतिरोधक शक्ति किसी कारण से घटी हुई हो, या नासिका की श्लेष्म कला पहले से धूल, धूम आदि से विदाह्य हो या Tonsillitis, adenoids, Sinusitis. हो, या नासामार्ग में किसी प्रकार की रचना सम्बन्धी विकृति हो या युवक अथवा युवती में क्षय रोग के होने की प्रकृति हो तो इस Virus का रोहण सुगमता से हो जाता है। इसी प्रकार जब

जब कोई व्यक्ति गर्मी से सहसा सर्दी में प्रवेश करता है अर्थात् गर्म जल से स्नान करके या गर्म बन्द कमरे में से खुली शीत, हवा में आता है या गर्मी के बाद सहसा शीत ऋतु का आगमन होता है तो सहसा शीत के स्पर्श होने से नासिका की श्लेष्म कला की रक्त वाहिनियां संकुचित हो जाती हैं जिससे श्लेष्म कला की जीवाणु प्रतिरोधक शक्ति क्षीण हो जाती है। ऐसी अवस्था में इसके किसी Virus को जो एक केरियर में तो वहां ही पड़ा होता है तथा दूसरों में बाहर से आता है वहां पर रोहण करने का अवसर मिल जाता है। इसीलिये सर्दी लग जाने को भी इस रोग का कारण कहा जाता है। सहसा अति शीत के स्पर्श से जब रक्त वाहिनियां संकुचित हो जाती हैं और वहां के सैलों को आक्सिजन कम मिलने लगती है तो उनमें न्यूनाधिक मृत्यु के हो जाने से Histamine उत्पन्न होता है जो वहां के शोथ का कारण हो सकता है। इस प्रकार Allergy के कारण भी तीव्र प्रतिश्याय हो सकता है। यद्यपि इस रोग में नासिका तथा नासा पश्चिम भाग से होने वाले स्राव में कुछ एक जीवाणु पाये जाते हैं जैसे Neisseria catarrhalis, Streptococcus Viridans, Pneumococcus, Diphtheroids. पर इन्हें रोग का कारण नहीं कहा जा सकता क्योंकि ये स्वस्थावस्था में भी पाये जाते हैं। इस रोग में होने वाले स्राव में ऐसे रोग जनक जीवाणु जैसे Haemophylus Influenzae, Streptococcus, Pyogenes, Staphylococcus Pyogenes. भी कभी कभी पाये जाते हैं। पर इन्हें भी इस रोग का कारण नहीं माना जाता। Virus के कारण इस रोग के हो जाने पर इनमें से किसी जीवाणु को वहां रोहण कर जाने का अवसर मिल जाता है। जिससे ये जीवाणु प्रतिश्याय के उपद्रवों का कारण तो हो जाते हैं। ~~प्रतिश्याय के उपद्रवों का कारण तो हो जाते हैं।~~ प्रतिश्याय रोग में Chemotherapy से जो लाभ नहीं होता इससे भी पता लगता है कि यह रोग इन जीवाणुओं के कारण नहीं होता ॥

सम्प्राप्ति :-

Virus का संक्रमण होने पर पहले तो गले और फिर नासिका के Submucous Tissue में विद्यमान रक्त वाहिनियाँ शिथिल हो जाती हैं (उनमें Vasodilatation हो जाता है।) जिससे नासा मार्ग में, विशेषतः Turbinates पर श्लेष्म कला फुल जाती और रक्त वर्ण हो जाती है। उसमें से ~~स्वच्छ~~ श्लेष्मिक द्रव या म्यूकस का स्राव बहुत अधिक होने लगता है जिसमें नाक की अंदर की झिल्ली के Cilia ~~वाले~~ वाले सैल ही होते हैं जीवाणु नहीं होते

Rhinorrhoea

जो फिर शीघ्र ही गाढ़ा हो जाता अर्थात् Mucopurulent हो जाता है। इस अवस्था में इसमें Pneumo-Strepto-Slaphylococci हो सकते हैं। नासिका की श्लेष्म कला के सूज जाने से नासा मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। नासिका की अन्दर की स्तर Cilia युक्त columnar सैलों से बनी है जिसमें Goblet सैल भी होते हैं। इसके नीचे शोथ हो जाने से से यहसारी नष्ट हो जाती है और फिर नहीं बनती है। नासा मार्ग से यह शोथ नासा स्रोतों या Paranasal Sinuses में तथा Eustachian Tube में भी प्रसरण कर सकता है। इन मार्गों के द्वार के बन्द हो जाने से तथा बन्द द्वार के पीछे विद्यमान वायु के विलीन हो जाने पर वहां वायु रिक्त प्रदेश या अवकाश (Vacuum) के बन जाने से सिर दर्द होता है जिसे अवकाश (Vacuum) सिर दर्द कह सकते हैं। इसी प्रकार शोथ युक्त Sinus के द्वार के बन्द हो जाने पर उसमें उत्पन्न स्राव के वहां तन कर भर जाने से भी सिर दर्द होता है जिसे दबाव के कारण होने वाला या Distension सिर दर्द कह सकते हैं। श्लेष्म कला के नीचे की लसीका वाहिनियों के द्वारा नीचे यह शोथ गले में भी फैल जाता है तथा कंठ नाली में भी हो जाता है। (Tracheitis).

लक्षण :-

इस रोग के Virus का संक्रमण होने के १२ से ४८ घन्टों के अन्दर यह रोग आरम्भ हो जाता है। यह रोग सहसा ही आरम्भ हुआ करता है। रोगी को अपनी नाक का स्रोत कुछ बन्द हुआ तथा गला कुछ शुष्क सा हुआ प्रतीत होता है। उसमें खुजली सी लगती है तथा छींकें आने लगती हैं। इनके साथ ही पतला स्राव होने लगता है जो कुछ घन्टों में ही गाढ़ा हो जाता है। नाक से स्राव जारी हो जाने के बाद छींक आनी बन्द हो जाती हैं। इन स्थानिक लक्षणों के साथ शरीर में सर्दी (Chilliness) तथा भारीपन (Malaise) भी प्रतीत होने लगता है। शाखाओं, कटि आदि के मांस में वेदना (Aching) सी लगने लगती है। ज्वर प्राय: नहीं होता या अति मृदु या गौण लक्षण के रूप में होता है। इन प्रारम्भिक लक्षणों के बाद दूसरे दिन तक नाक से निकलने वाले गाढ़े स्राव की मात्रा पर्याप्त बढ़ जाती है। नासिका से श्वास लेना कठिन हो जाता है। गन्ध और स्वाद की संज्ञा मन्द हो जाती है। गले(Pharynx) तथा कण्ठ (Larynx) में शोथ के होने के कारण क्रमश: खुश्क खांसी तथा आवाज बैठ जाने के लक्षण हो जाते हैं। बालकों में Tonsils भी सूज जाते हैं। इस प्रकार युवकों में यह रोग प्राय: स्थानिक रूप में ही होता है। ज्वर, शैथिल्य आदि व्यापक लक्षण इस रोग में प्राय: नहीं होते। वे

तो इनफलुएन्जा में पाये जाते हैं। जैसे यह छींकों से आरम्भ होता है वह इस लक्षण के साथ आरम्भ नहीं होता। यह रोग तीन चार दिन में ठीक हो जाता है और लगभग सात दिन तक खांसी का लक्षण भी शान्त हो जाता है तो भी आधे से अधिक लोगों में खांसी, गलशोथ आदि उपद्रव हो जाते हैं। जुकाम के बाद खांसी का लक्षण सम्भवत: संक्रमण (Infection) के नीचे फैलने से रोकने के लिये होता है। इस रोग में Maxillary Sinus में शोथ प्रसरण कर जाया करता है जिससे भौंहों या चेहरे पर दर्द हुआ करता है। नासा स्रोत: शोथ, Tonsillitis, otitis, Laryngitis (Tracheitis) जुकाम के प्रधान प्रधान उपद्रव होते हैं।

[illegible handwritten notes: ... Eustachian प्रणाली में शोथ ... [illegible] ...]

नासा स्रोत: शोथ :- (Paranasal Sinusitis)

यह रोग तीव्र प्रतिश्याय तथा इन्फ्लुएन्जा के उपद्रव के रूप में हुआ करता है। इन रोगों के दौरान में किसी Sinus में संक्रमण (Infection) के हो जाने से यह उपद्रव होता है। Frontal Sinus, मस्तक में भौंहों के पीछे होती है। उसका द्वार नासा मध्य मार्ग (Middle meatus) के अग्रभाग में, नासिका के अन्दर, खुलता है। इस Sinus की श्लेष्म कला में शोथ के प्रसरण कर जाने पर तथा इसके द्वार के बन्द हो जाने पर माथे में तीव्र वेदना प्रतीत होती है। Maxillary Sinus का छिद्र भी नासा मध्य मार्ग में खुलता है। इस Sinus की श्लेष्म कला में शोथ प्रसरण कर जाय तथा इसका द्वार बन्द हो जाय तो तीव्र वेदना आंख के नीचे गाल में प्रतीत होती है। Eathmoidal Sinuses. अग्रिम मध्यम और पश्चिम (Anterior Middle तथा Posterior) तीन समूहों में, नासा गुहा के ऊपर के भाग तथा नेत्र गुहा (Orbit) दोनों के बीच के प्रदेश में, होती हैं। इनमें से अग्रिम तथा मध्यम Sinuses तो Middle meatus में खुलती हैं तथा पश्चिम Sinus, Superior meatus के अगले भाग में, नाक में, खुलती है। इनकी श्लेष्म कला में शोथ के प्रसरण कर जाने से, इनके द्वार के बन्द हो जाने पर, नेत्र के पीछे, वेदना प्रतीत होती है। Sphenoidal Sinus नासिका के ऊपर के भाग में Superior Turbinate के भी पीछे खुलती है। उसकी श्लेष्म कला में शोथ के प्रसरण कर जाने से तथा उसके द्वार के बन्द हो जाने से सिर की गहराई में वेदना प्रतीत होती है। Maxillary Sinus में यह शोथ अधिकतः हुआ करता है। इससे दूसरे नम्बर पर यह शोथ Ethmoidal Sinus में [illegible] होता है

[illegible handwritten notes: जो बालकों में विशेष होता है। Pansinusitis ... [illegible] ... Bronchiectasis ... WBC बढ़ जाते हैं ... [illegible]]

वातिक प्रतिश्याय :- Allergic Rhinitis, Nervous Rhinitis.

जब कोई प्रोटीन त्वचा या श्लेष्म कला द्वारा शरीर में प्रवेश करता है तब वहां के सैल उसे पचाने के लिय Anti-Bodies बना लेते हैं । जिससे वह Amino-Acids में बदल जाता है तथा ये Anti-Bodies रक्त में रह जाते हैं फिर जब वह प्रोटीन आता है तो वह इनके द्वारा पच जाता है। इस प्रकार शरीर में सब प्रोटीनों के लिये Immunity होती है। कुछ एक व्यक्तिओं में विशेषत: बालकों और नवयुवकों, लड़के-लड़कियों की नासिका की श्लेष्म कला में किसी एक विशेष प्रकार के प्रोटीन पदार्थ के लिये जो सर्व साधारण व्यक्तिओं के लिये सर्वथा निरुपद्रव होता है न्यूनाधिक अक्षमता या असात्म्यता (Allergy) होती है। यह प्रोटीन पदार्थ जब उनकी नासिका में प्रवेश करता है तब उन्हें सहसा प्रतिश्याय का वेग हो जाता है। सम्भव है कि सहसा सर्दी लगने से नाक में हिस्टामीन उत्पन्न हो जाता है जिससे वहां की रक्तवाहिनियों की दीवार आहत होकर फैल जाती है और उनसे द्रव की मात्रा बहुत निकलने लगती है । ऐसी अवस्था में वहां पड़ा या बाहर से आया Virus जो प्रोटीन है सैलों में प्रविष्ट हो जाता है । कुछ एक प्रोटीन पदार्थों के लिये इस प्रकार की अक्षमता की प्रवृत्ति जन्म से ही आती प्रतीत होती है । क्योंकि जिस परिवार में यह रोग पाया जाता है उसके अनेक व्यक्तिओं में भिन्न भिन्न रूप में यह निर्बलता देखने में आती है । इन लोगों का नाड़ी मण्डल (Nervous System) अधिक विक्षोभ शील होता है । भिन्न भिन्न घासों तथा Fungi से उड़ने वाले पराग (Pollen) में विद्यमान प्रोटीन के लिये Allergy होने का रोग अधिक पाया जाता है । घर के अन्दर झाड़ने बुहारने से उत्पन्न होने वाली धूल (House-Dust). में भी कोई प्रोटीन पदार्थ होता है । उसके लिये भी कुछ एक व्यक्तिओं की नासिका में अक्षमता होती है। सर्दी की ऋतु के बाद अप्रैल के महीने में तथा सर्दी की ऋतु के पहले अक्तूबर के महीने में जब प्रबल हवायें चलने लगती हैं तो उनके द्वारा घासों तथा Fungi की पराग उड़ाकर हम सब की नासिका में प्रवेश करती है । असहन शील (Allergic) प्रकृति के व्यक्तिओं की नासिका की श्लेष्म कला में नि:क्षिप्त हुये ये प्रोटीन कण विपरीत गुण होने के कारण उन पर विष का सा प्रभाव करते हैं अर्थात् उनके लिये ये Antigen या Allergen हो जाते हैं । जिससे इनकी नासिका की श्लेष्म कला में प्रवेश करने पर उसके सैलों में इनके विपरीत Antibodies उत्पन्न हो जाते हैं और उन्हीं सैलों में पड़े रह जाते हैं । रक्त में नहीं जाते जिन्हें Sensitizing Antibodies

कहते हैं। नासिका की श्लेष्म कला के अतिरिक्त ये नेत्रों की श्लेष्म कला रक्त के Plasma तथा त्वचा में भी उत्पन्न हो सकते हैं और वहीं सेलों में पड़े रहते हैं। अगली मौसम में जब यही पराग हवा के साथ उड़ कर फिर नासिका की श्लेष्म कला में प्रवेश करता है अर्थात् फिर जब Antigen वहां आता है तो वहां विद्यमान Sensitizing Antibody के साथ इसका संघर्ष होता है जिससे उस स्थान पर ऐसी विनाशक प्रतिक्रिया होती है कि वहां के आहत या दात हुये सेलों या Protein Tissue में से एक विषैला प्रोटीन पदार्थ जो Histamine या तत्सदृश कोई द्रव्य होता है उत्पन्न हो जाता है जिससे नासा श्लेष्म कला की रक्त वाहिनियां शिथिल हो जाती हैं अर्थात् नासिका की सिराओं (Capillaries) में शैथिल्य (Vasodilatation या Paralysis) हो जाता है। उनमें से द्रव के रिसने की प्रवृत्ति या उनके सेलों की Permeability बढ़ जाती है जिससे नासा श्लेष्म कला में हलकी लालिमा और श्वयथु (Aedema) हो जाते हैं। नासिका, तालु, गले आदि में खुजली होकर छींकें आने लग जाती हैं और नाक से पतला सा श्लेष्म द्रव (Mucus) बहुत मात्रा में निकलने लगता है। छींकों का यह दौरा प्रायः प्रातःकाल के समय होता है। नाक की परीक्षा करने पर उसकी श्लेष्म कला पानी से भरी हुई तथा फूली हुई पाई जाती है। पर वह अधिक रक्त वर्ण न होकर कुछ श्वेत वर्ण ही होती है। नासिका से निकले स्राव की परीक्षा करने पर उसमें Eosinophil Leucocytes भी मिलते हैं। इनके वहां नष्ट होने से इनमें से भी हिस्टामीन निकलता है और सिराओं में से द्रव और निकलता है। रोगी को ज्वर नहीं होता। जब जब हवा के द्वारा पराग (Pollen) उड़कर नाक में प्रवेश करता है तभी तभी इस प्रतिश्याय का दौरा हो जाता है, अन्यथा प्रतिश्याय नहीं होता। दौरा सहसा प्रारम्भ होता है और सहसा ही समाप्त हो जाता है। वर्षा हो जाने पर या किसी कारण से जब हवा में पराग नहीं रहता रोग नहीं होता। जब रोगी में असहमता (Allergy) अधिक होती है अथवा विरोधी प्रोटीन द्रव्य (Antigen) अधिक मात्रा में शरीर में प्रविष्ट हो जाता है तो श्वास नालियों के मांस में Spasm होकर तथा रक्तवाहिनियों से स्राव होकर कास तथा श्वास (Asthma) के भी वेग हो जाते हैं। यह भी बहुत सम्भव है कि प्रतिश्याय मात्र Allergy के कारण ही होता है और यह सब प्रतिक्रिया आगन्तु विषयां Antigen के निवारण के लिये होती है।

जीर्ण प्रतिश्याय :- (Chronic Rhinitis):

यदि बाहर से धूल या धूम अधिकता से नाक में प्रवेश करता हो, या Aednoids, Tonsillitis हो या नासा मार्ग की रचना में किसी प्रकार की विषमता हो या किसी Sinus में शोथ रहता हो, या उर:दाय रोग की प्रवृत्ति हो तो नासिका की श्लेष्म कला में शोथ चिरस्थायी रूप में रहता है या प्रतिश्याय शीघ्र शीघ्र होता रहता है। चिरस्थायी प्रतिश्याय के कारण जब Inferior-Turbinate के अगले सिरे तथा पिछले सिरे पर की श्लेष्म कला में अति वृद्धि (Hyperplasia) हो जाती है तब उसे Chronic Hypertrophic Rhinitis कहते हैं। जीर्ण प्रतिश्याय रोग में नासा मार्ग कुछ कुछ बन्द सा रहता है तथा उसमें से पतला या गाढ़ा श्लैष्मिक या श्लेष्म पूय युक्त (Mucous or Mucopurulent) स्राव लगातार बना रहता है। बालक में Eustachian Tube के द्वारा शोथ कान में संक्रमण कर जाता है जिससे कर्णशोथ (Otitis Media) का रोग हो जाता है। एक नाक से पूय युक्त (Purulent) स्राव होतारहै तो उधर नासा स्रोत: शोथ (Sinusitis) का सन्देह हो जाना चाहिये। ऐसी अवस्था में रोगी को कुछ गन्ध सी भी प्रतीत होती है।

शुष्क वातिक प्रतिश्याय :- Atrophic Rhinitis:

कुछ एक निर्बल प्रकृति की युवक युवतियों की जिन्हें सदा प्रतिश्याय रहता हो, नासिका में प्रतिरोधक शक्ति की न्यूनता के कारण श्लेष्म कला स्थूल न होकर क्षीण हो जाती है, अर्थात् उसका रोंगटों वाला वहिस्तर (Epithelium) जिसके द्वारा नासिका गत मल बाहर कर दिया जाता है नष्ट होने लग जाती है। उसके स्थान पर चपटे Squmous सैल आ जाते हैं। श्लेष्म कला की धमनियों में Peri तथा Endarteritis का लक्षण होता जाता है, आसपास Fibrosis होती हैं। इस क्षीणता का कारण नासा के अन्दर Vasoconstriction का रहना है या विटामिन "ए" तथा "डी" की कमी है। इस विषय में निश्चय नहीं हुआ। इस क्षीणता (Atrophic Degenration) की प्रक्रिया के कारण इस प्रकार के जीर्ण प्रतिश्याय को Atrophic Rhinitis कहते हैं। नासिका की श्लेष्म कला दोनों ओर देखने में सुकड़ी हुई, पतली, रक्त विहीन, फीके रंग की होती है। जिससे नाक का मार्ग बड़ा, खुला और पीछे ऊपर तक स्पष्ट दीखता है। श्लेष्म कला शुष्क तथा मल की परतें

(Crusts) से छाईं होती है जिनमें जीवाणु (Saprophytes)जनित [redacted] विदाह (Decomposition) के परिणाम रुप में दुर्गन्ध उत्पन्न हो जाती है जो परीक्षक को ही प्रतीत होती है, रोगी को नहीं। क्योंकि नासा की श्लेष्म कला की क्षीणता के साथ उसकी गन्ध संज्ञा हीन हो जाती है। इस जीर्ण प्रतिश्याय के दुर्गन्ध जनक होने के कारण इसे पूर्ति प्रतिश्याय (Ozaena) भी कहते हैं।

तीव्र प्रतिश्याय की चिकित्सा :- तीव्र प्रतिश्याय रोग के होते ही रोगी २४ या ४८ घन्टों के लिये शैय्याशायी हो जाय और पूर्ण विश्राम कर ले तो रोग न तो तीव्र रुप लेता है और ना ही कोई उपद्रव होता है। ना ही यह दूसरों में फैलता है। यह विश्राम चिकित्सा इस रोग की उत्तम चिकित्सा है। यदि शरीर में क्षय रोग की प्रवृत्ति हो या आयु बढ़ी हो या शरीर की किसी प्रकार की निर्बलता के कारण प्रतिश्याय रोग बार बार होता हो तो तीन चार दिन तक विश्राम को जारी रखना चाहिये। विश्राम के दौरान में किसी उष्ण पेय, या गर्म जल, उष्ण, लघु, रुक्ष, गुण, सुपच आहार के सेवन से लाभ रहता है। गर्म जल में निम्बु, [redacted] शहद, तथा २-४ ड्राम ब्राण्डी मिलाकर पीने से भी आराम प्रतीत होता है। किसी किसी को १-१ चम्मच सोडा गर्म जल से ३-३ घन्टे बाद लेने से आराम रहता है परन्तु प्रतिश्याय निवारक कोई औषधि नहीं है। रोगी के कष्ट को कम करने के लिये वेदना शामक (Analgesic) औषधियाँ का प्रयोग किया जाता है। उदाहरणतः Aspirin, Phenacetin प्रत्येक चार ग्रेन, Codeine Phosphate ८ मिलि० या $\frac{1}{8}$ ग्रेन की गोलियां या केवल Aspirin $3\frac{1}{2}$, Phenacetin $2\frac{1}{2}$ ग्रेन की बनी गोलियां या Aspirin तथा Dover's Powder समान समान की बनी गोलियां ५ ग्रेन की मात्रा में दिन में तीन चार बार या Aspirin ४ ग्रेन, कपुर १ ग्रेन तथा Atropine $\frac{1}{200}$ ग्रेन की पुड़ियां ६-६ घन्टे पर दी [redacted] जाती हैं। Pot: Acet; Pot: Cit; १४-१५ ग्रेन, Liqu: Ammon: Acit: Dil; ६० बुन्द तथा कपूर, जल १ औंस मिला कर ६-६ घन्टे पर देने से भी आराम प्रतीत होता है। नार्मल सैलाइन या ५-२० प्र०श० ग्लूकोज, जल के द्वारा कुल्ले करने से भी आराम प्रतीत होता है। नासिका और गले की शोथ युक्त श्लेष्म कला को संकुचित करने के लिये संकोचक (Vasoconstrictor) औषधियां नाक में डाली जाती हैं जैसे १ प्रतिशतक Ephedrine Sulphate नार्मल [redacted] सैलाइन में मिलाकर या $\frac{1}{4}$ प्रतिशतक Neosynephrine नार्मल

सैलाइन में मिलाकर नाक में डालने से नासा मार्ग खुल जाता है। Amphetamine (Benzedrine) inhalent के सूंघने से भी यही लाभ होता है। हलके गर्म नार्मल सैलाइन द्वारा कभी कभी नासिका को धो लेने से भी कुछ आराम प्रतीत होता है। १ पाइंट उबलते हुये जल को ५-७ मिनट रखकर उसमें एक छोटा चम्मच Tincture Benzoin Co. डालकर उसकी वाष्प के नाक में लेने या नाक पर सिकाई करने से भी नासिका का शोथ शान्त होता है। Eucalyptus Oil के वाष्प के भी इसी प्रकार लेने से आराम प्रतीत होता है। १ पाइंट उबले हुये जल में Menthol-Spirit. (२५ प्रतिशत) की १० बुन्द डालकर भी वाष्प ले सकते हैं। Liquid Paraffin में आधा प्रतिशत की मात्रा में Chloretone, Menthol तथा Lemon Oil. मिलाकर नाक में डालने से या Endrine. या Privine (Naphalozine Hydrochl के नाक में डालने से नासा का शोथ शान्त होता है। इन सबका Virus पर कोई प्रभाव नहीं होता, केवल वाह्य संक्रमण (Secondary Infection) पर कुछ प्रभाव होता है। Neosynephrine १० मिलि० के ४-४ घन्टे पर मुख द्वारा देने से या Ephedrine के २५ मिलि० मात्रा में देने से भी लाभ होता है। इसे किसी Barbiturate से मिला के भी दे सकते हैं।

प्रतिषेधक चिकित्सा :-

जब यह रोग फैला हुआ हो तो भीड़ भाड़ में नहीं जाना चाहिये। जाना पड़े तो मुख बन्द रखना चाहिये। तथा वहां से आते ही नार्मल सैलाइन से नाक को धो लेना चाहिये। इस रोग के रोगी के सम्पर्क से बचना चाहिये। जिन्हें जुकाम शीघ्र शीघ्र हो जाता हो, उन्हें सदा नाक से श्वास प्रश्वास लेना चाहिये। गर्मी के बाद सहसा सर्दी में जाने से बचना चाहिये। कुछ कुछ शीत जल द्वारा स्नान करके त्वचा को शीत सहने योग्य बनाने का यत्न करना चाहिये। विटामिनों का सेवन करना चाहिये। खुली हवा में सोना व रहना चाहिये और उचित व्यायाम, विश्राम, आहार आदि के द्वारा शरीर को स्वस्थ बनाना चाहिये। तथा Stock अथवा Autogenous Catarrhal Vaccine के स्वल्प मात्रा में सप्ताह के अन्तर से शीतकाल में कुछ इंजेक्शन ले लेने चाहियें .१ मिलिलिटर से १. मिलिलिटर तक १-१ सप्ताह के अन्तर से ले लेने चाहियें इस मात्रा के बाद १५-१५ दिन बाद लेने चाहियें। नासा स्रोतोरोग या Sinusitis. में जीवाणुओं का संक्रमण होने से Procaine Penicillin. का दिने में १-२ बार प्रयोग करना चाहिये। नाक पर सिकाई करनी चाहिये

Allergic Rhinitis: की चिकित्सा :-

रोगी के नाड़ी मण्डल (Nervous System) की निर्बलता या विदाभि शीलता को कि जो इस रोग का एक कारण है हटाने के लिये यत्न करना चाहिये। इस उद्देश्य से Vitamin A.D. Calci Ostelin तथा मक्खन, घृत आदि दिये जा सकते हैं। नासिका की श्लेष्म कला के विदाभि शील प्रदेश की विदाभि शीलता को हटाने के लिये Argyrol १० प्रतिशतक लगा सकते हैं। Adrenaline in Paraffin. (५०००-१) के नाक में डालने से भी लाभ होता है। आंखों पर काला चश्मा लगाये रखना चाहिये। सर्दी के अन्त में चलने वाली हवा में विद्यमान पराग से बचने के लिये समुद्र के किनारे या पर्वत प्रदेश पर जा सकते हैं अथवा इस मौसम के कि जिसमें इस रोग का वेग प्रतिवर्ष होता है, २-३ मास पहले से ही बाजार में मिलने वाले Dilute Extract of Pollen (Pollaccine) के इंजेक्शन त्वचा द्वारा अति स्वल्प मात्रा में आरम्भ करके क्रमश: बढ़ती हुई मात्रा में एक एक सप्ताह बाद ले लेने चाहियें। इसके ४०-१०० Units की मात्रा से आरम्भ करके १०-१५ इंजेक्शन एक एक सप्ताह के अंतर से लेने से ऐसे Blocking Anti-Body उत्पन्न हो जाते हैं जो श्लेष्म कला तथा शरीर में उत्पन्न हुये Sensitizing Anti-Body. के विपरीत कार्य करते हैं। इस प्रकार ४०-६०-८०-१००-२००-४००-६००-८००-१०००-२०००-४०००-६०००-८०००-१०००० आदि यूनिट्स दे सकते हैं। इस इंजेक्शन के लेने से १ घन्टे पहले Cal: Lact; १० ग्रे० की मात्रा में लेने से इसका स्थानिक दुष्प्रभाव कोई नहीं होता। मार्च में इस इंजेक्शन के प्रारम्भ करने से पहले फरवरी में ही रोगी की अग्रबाहु पर एक बुन्द नार्मल सैलाईन की तथा समीप ही १ बुन्द Pollaccine (१ मिलिलि० में २० हजार युनिट) की रखके दोनों में पृथक पृथक हाईपोडर्मिक नीडल से त्वचा में एक छेद सा कर दिया जाता है। बाद में रुई से दोनों बुन्दों को पोंछ दिया जाता है। १५ मिनट बाद Pollaccine के बुन्द के स्थान पर एक लाल चकता दीखने लगता है। इसे Positive Reaction कहते हैं। जब इस रोग का दौरा हो जाय तो उसके शान्त करने के लिये ~~Cortisone (Corlin)~~ Prednisone के १० मिलिग्राम की मात्रा में आठ आठ घन्टे पर देने से या Corticotropin (Ac T H) के ४० Units की मात्रा में प्रतिदिन मांस द्वारा देने से तुरन्त लाभ हो जाता है। लाभ हो जाने पर मात्रा आधी या चौथाई कर दी जाती है तथा औषधि एक सप्ताह तक ही दी जाती है या Hydrocortisone Snuff के नस्य के रुप में नाक में लेने से तुरंत लाभ हो जाता है। अथवा ३ बुन्द Adrenaline तथा १०० Units of

या इसके Nasaldroh (१ मिलीमी० २मिलि०)
अथवा के लिये adrenaline १०००-१ + ३ गेन Snuff १/८ ग्रा. शीशी में डालें

या किसी Vasoconstrictor रक्तवाहिनी संकोचक औषधि जैसे Phynylephrine Hydro. १० मिलि. के साथ किसी ~~anti~~ हिस्टामीन विरोधी औषधि जैसे Chlorphenira mine maleate २ मिलि. के साथ एस्पिरिन फिनेसेटीन के फीन को मिलाके दे सकते हैं अर्थात् Capramin (Glaxo) की गोलियां दिन में ३ बार दे सकते हैं।

Pollen Toxin: के त्वचा द्वारा प्रतिदिन लेने से भी यह रोग शान्त हो जाता है। Antihistamine Drugs. के प्रयोग से यह रोग तुरन्त शांत तो हो जाता है, नष्ट नहीं होता। इस प्रयोजन से Benadryl २५-५० मिलि० (Elixir १ चम्मच में १० मिलि० बालकों में) या Phenergan १० से २५ मिलिग्राम की या Antistine १½ ग्रेन की गोली या Antihisan ५० मिलि० या Dibistin ५० मिलि० दिन में दो तीन बार दे सकते हैं। या Histryl Spansule ५ मिलि० १२-१२ घन्टे पर दें। रक्तवाहिनि संकोच Vasoconstriction के लिये Privine की बुन्दों के या Normal Saline. में ½ १% Ephedrine Sulfate या Neosynephrine ¼ प्रंश० मिला कर इन्हें नाक में ३-६ दिन तक डालना चाहिये Hydrocortisone Snuff भी नाक में ली जाय तो तुरन्त लाभ हो जाता है।

चिरस्थायी प्रतिश्याय Chronic Rhinitis की चिकित्सा :-

जीर्ण प्रतिश्याय रोगी की जीवाणु प्रतिरोधक शक्ति को बढ़ाने के लिये Vitamin A.D. तथा कैल्सियम (Calci-Ostelin) देने चाहियें तथा उसे बाष्प देश से हटकर शुष्क प्रदेश में रहना चाहिये। यदि नासा मार्ग में कोई विक्षोभक कारण हो Adenoids हो Tonsillitis हो तो इनकी चिकित्सा करनी चाहिये। बाहर से आने वाले धूल, धूम आदि विक्षोभों से बचना चाहिये। नासिका मार्ग के शोथ के हटाने के लिये Menthol या Eucalyptus Oil से युक्त गर्म वाष्प का नासिका में सेक पहुंचाना चाहिये। नासा मार्ग को नार्मल सेलाइन से या उसमें सोडा कार्ब तथा Chloretone ½ प्रतिशतक और ग्लिसरीन १० प्रतिशतक मात्रा में मिलाकर उससे धोना चाहिये। अथवा Menthol, Eucalyptus Oil, Chloretone प्रत्येक ½ प्रतिशतक मात्रा में Liquid Paraffine में मिला इसका आश्चयोतन नासिका में लेना चाहिये। Sinusitis भी इसी चिकित्सा से ठीक हो सकता है। पूति प्रतिश्याय (Ozaena) के लिये Borax, Sodium Chloride, Soda-Bicarb. समान समान मात्रा में मिलाकर इसकी १ ड्राम मात्रा को १ पाइंट हलके गर्म जल में मिला, उससे या Borax, Sodabicarb. ६-६ ग्रेन, Acid Carb: २ बुंद, खाण्ड १० ग्रेन, शुद्ध जल १ औंस, मिला कर इससे नाक को धोना चाहिये या Pot. Permang. (२ पा० में

१ ग्रेन) से धोना चाहिये । उसके बाद नासा छिद्र में सुगन्धा युक्त तेल की या Liqu.Paraffine. की एक दो बुन्द डाल देनी चाहिये । या Iodine Glycerin की भीगी रुई भरनी चाहिये या ग्लिसरीन में २५ प्रतिशतक ग्लूकोज का जलीय घोल मिला कर नाक में डालना चाहिये। Acetyl-Choline को जो Vasodilator है Lactic Acid के साथ मिलाकर नाक में डालने से Vasoconstriction दूर होता है । Cod Liver Oil. डालने से विटामिन 'ए' की पुर्ति होती है । मल्टि विटामिन्स का मुख द्वारा प्रयोग करना चाहिये ।

आयुर्वेद में प्रतिश्याय रोग :-

वाह्य विदाभिक द्रव्य के 'प्रति' जब नासिका चलने (श्येङ्‌ गतौ) लगती है तब उस रोग को प्रतिश्याय कहा है ।

कारण :-

साधारणत: तो नासिका गत् वायु, पित, कफ, बाहर से आये विषैले या विदाभिक द्रव्य को बिना प्रकुपित हुये ही नष्ट कर देते हैं । परन्तु जब ये दूषित होते हैं, तब ये प्रकुपित होकर आगन्तु विदाभिक द्रव्य को नष्ट कर पाते हैं । देहाग्नि के मन्द हो जाने से शरीर में आम दोष (anabolic mal products) या कफ दोष बढ़ता है । देहाग्नि के तीव्रतर हो जाने से अति पाक जनित दोष (catabolic mal products) या पित दोष देह में बढ़ जाता है । शरीर की जीवनी शक्ति या प्राण शक्ति के घट जाने से शरीर में एक दोष जिसे वायु दोष कहा जाता है बढ़ता है । इनमें से कफ दोष बढ़ा हुआ हो तो नासिका में विषैले या विदाभिक द्रव्य के आने पर कफ प्रकुपित हो जाता है, नासिका से गाढ़े कफ द्रव का स्रवण अति मात्रा में होने लगता है जिससे आगन्तु विषैला द्रव्य नष्ट हो जाता है । शरीर में पित दोष बढ़ा हो तो नासिका में विषैले प्रतिश्याय जनक द्रव्य के आने पर वहां पित की पचन प्रक्रिया तीव्र हो जाती है । तो आगन्तु द्रव्य को नष्ट कर देती है । इसमें नाक की श्लेष्म कला में रक्त का संचय अधिक होता है । नाक से निकलने वाला वायु तथा स्राव अधिक गर्म होते हैं । शरीर में वायु दोष बढ़ा हुआ हो तो नाक की श्लेष्म कला में आगन्तु विषैले द्रव्य को सहन करने और बाहिर फेंक देने की शक्ति कम होती है । विषैले विदाभिक द्रव्य के प्रभाव से नाक की रक्त वाहिनियां शिथिल हो जाती या फैल जाती हैं । जिससे उनमें से पतला जलांश बहुत अधिक मात्रा में निकलता है । इस जलांश के वहां बहुत भर जाने से छींकें बहुत आती हैं तथा नाक से पतला सा स्राव बहुत होता है । वायु की इस प्रतिक्रिया या प्रकोप से अन्तत: आगन्तु विषैला

द्रव्य नष्ट हो जाता है । नाक में या शरीर में वातिक निर्बलता के होने से नासा श्लेष्म कला में विनाशक प्रक्रिया (Atrophy) भी हो सकती है । अर्थात् बार बार जुकाम होकर यह श्लेष्म कला क्षीण हो जाती है । फिर भी प्रश्न होता है कि प्रतिश्याय होता क्यों है ? शरीर में कफ दोष, पित्त दोष या वायु दोष किसी की वृद्धि होने पर जब सिर को सहसा शीत लग जाता है तो नासिका की रक्त वाहिनियाँ तथा श्लेष्म (Lymphatics) द्रव वाहिनियों में स्तम्भ हो जाता है । अर्थात् उनमें से स्राव की मात्रा घट जाती है । जिससे जुकाम के कारण भूत आगन्तु विक्षोभक विष को नष्ट करने की नाक की शक्ति कम हो जाती है अर्थात् शरीर में तथा नासिका में हुई वायु वृद्धि इस रोग का प्रधान कारण है । इसकी वृद्धि के कारण आगन्तु विषैला द्रव्य प्रतिश्याय रोग को उत्पन्न कर देता है। तो भी दोषों की अधिकता से (कफज) कफ प्रतिश्याय (Catarrhal Rh:) पित्त प्रतिश्याय (Suppurative Rhinitis) वात प्रतिश्याय (Nervous Rhinitis) मुख्यत: तीन प्रकार का प्रतिश्याय होता है ।

(च०।चि०।२६।तथा सु०।उ०।२४)

जीर्ण प्रतिश्याय या पीनस :-

देहाग्नि की मन्दता, अथवा तीव्रता, अथवा शरीर की प्राण शक्ति की हीनता अर्थात् वायु की वृद्धि चिर स्थायी रूप में रहे और ऐसा व्यक्ति सदा धूल धूम या वाष्प मय प्रदेश में रहताहो तो प्रतिश्याय रोग जीर्ण रूप में रहता है । नासिका में कफ की प्रतिक्रिया या प्रकोप विशेष हो तो नासा रोध तथा नासा स्राव के लक्षण रहते हैं । इसे श्लेष्माधिक जीर्ण प्रतिश्याय (Hypertrophic Rhinitis) कहते हैं । नासिका में पाक सूचक प्रतिक्रिया हो अर्थात् किसी नासा संबंधी स्रोतस् में पूय भाव हो, नाक से पूय मिश्रित स्राव होता हो तो इसे जीर्ण पित्त प्रतिश्याय (Chronic Suppurative Rhinitis) कहते हैं । इनमें कफ तथा पित्त के प्रकोप के साथ वायु का प्रकोप अर्थात् दैहिक प्राण शक्ति की हीनता भी होती है । कभी कभी नासिका की श्लेष्म कला शुष्क हो जाती है । उसकी श्लेष्म ग्रन्थियों से स्राव कम हो जाता है तब इसे जीर्ण वातिक प्रतिश्याय (Rhinitis Sicca) कहते हैं । वायु की वृद्धि इस रोग का प्रधान कारण है ।

दुष्ट प्रतिश्याय :- Ozaena,Atrophic rhinitis:

जीर्ण प्रतिश्याय में कुछ काल बाद नासिका की श्लेष्म कला में वातिक क्षीणता हो जाती है । उसके पतले हो जाने से

नासा मार्ग चौड़ा एवं खुला हो जाता है । श्लेष्म स्राव के वहां सूख जाने एवं विदग्ध हो जाने से नासा में से दुर्गन्ध आने लगती है । जो रोगी की घ्राण शक्ति के नष्ट हो जाने से उसे नहीं लगती ॥

(सु०।उ०।२४)

उपद्रव :-

नासा मार्ग से शोथ नासाकर्ण स्रोत में और वहां से मध्य कर्ण में चला जाय तो बाधिर्य रोग, नासा नेत्र स्रोत, में से नेत्र में चला जाय तो नेत्र रोग, नासा से नीचे गले कण्ठ तथा श्वास मार्ग में फैल जाय तो कास रोग हो जाता है । (सु०।उ०।२४)

प्रतिश्याय चिकित्सा :-

कफ प्रतिश्याय में रोगी को सिर पर गर्म कपड़ा लपेट कर एक दो दिन निर्वात गृह में लेटे रहने से और गर्म जल या मुंग, अरहर, कुलथी, बैंगन, परवल, आदि किसी के यूष या तुलसी पत्र ३ पाव, सौंफ १ पाव, बनफशा, गाजवां, सौंठ, उन्नाव एक-एक छटांक, मरिच, इलायची आधा-आधा छटांक मिलाकर बनाई चाय पर रहने से आराम आ जाता है । औषधियों में से चित्रक, हरीतकी के चाटने या दही में मरिच और गुड़ मिलाकर लेने से या पुराने गुड़ के साथ बनी व्योषादि चूर्ण की गोलियों के लेने से इस रोग में आराम आ जाता है। द्राक्षा, गुलाब, उन्नाव, रेशाखतमी, खुब्बा जी, श्वेत चन्दन, $\frac{1}{2}$ - $\frac{1}{2}$ तो० गुलबनफशा, मुलहटी, सौंफ १-१ तोला, सौंठ २ तो० को १$\frac{1}{2}$ सेर जल में भिगो, पका के $\frac{1}{2}$ सेर रख के १ सेर मिश्री डालके बनाया शर्बत १-२ तो० दिन में कई बार चाटने से भी आराम आता है । प्रारम्भ में कर्पूर, वचा, जीरा, युकलिप्टस तैल आदि के सुंघने से तथा जब कफ गाढ़ा हो जाय तो कटफल, मरिच, पिप्ली, वायबिडंग आदि का नस्य लेने से सिर हलका होता है । पित्त प्रतिश्याय में दोष पाचनार्थ सौंठ से पका हुआ दूध दें फिर भी पूय आता रहे तो रोगी को कोई तिक्त घृत लेना चाहिये । नाक को पंच क्षीरी, त्वक्कषाय से धोकर उसमें व्याघ्रीतेल, या पाठादि तैल या जात्यादि घृत या जात्यादि तैल डालना चाहिये । भोजन में मुंग के यूष या दूध या मांस रस से गेहूं, चावल आदि दें । वात प्रतिश्याय में रोगी को मक्खन या कोई बल्य घृत जैसे शतावरी घृत या जीवनीय घृत, पाराशर घृत, पीना चाहिये । दूध, मांस रस आदि पौष्टिक आहार लेने चाहियें । अणु तैल या माष तैल या षड् बिन्दु घृत (भृंग, लवंग, कुष्ठ, मुलहठी, सौंठ, दूध से साधित) का नस्य लेना

चाहिये । जीर्ण प्रतिश्याय में नाक को लवण जल से धोने, षड्बिन्दु घृत या षड्बिन्दु तैल या माष तैल के नस्य से तथा चित्रक हरीतकी के अथवा त्रिफला धान्यकावलेह (त्रिफला ३, धनिया १ छटांक, मिश्री ८ छटांक, की चासनी में मिला दें, मधु ६ छटांक भी मिलायें) के तीन माशा की मात्रा में लेने से तथा उपर्युक्त तुलसी आदि के चाय के प्रयोग से लाभ होता है । दुष्ट प्रतिश्याय में लवणोदक द्वारा प्रक्षालन तथा व्याघ्री तैल के नस्य से लाभ होता है । दाय प्रतिश्याय में मृगांक रस के प्रयोग से लाभ होता है ।

श्वास स्थान की रचना - कण्ठ नाली (Trachea):-

१०-११ सैन्टीमीटर लम्बी २ सैन्टीमीटर के लगभग चौड़ी नाली, एक लचकीली स्नायुतन्तु की झिल्ली से, जिसमें तरुणास्थियों के छल्ले - जो पीछे की तरफ अपूर्ण होते हैं, पड़े हुए हैं - बनी है । कण्ठ नाली के पिछली और इस झिल्ली के अंदर अनैच्छिक मांसपेशी (Tracheal Muscle) भी रहती है । इस झिल्ली के अन्दर की ओर Sub-mucous स्तर जिसमें रक्तवाहिनियां, नाड़ियां व श्लेष्म-ग्रन्थियां (Mucous Glands) होती हैं, रहती है, तथा उसके भी अन्दर श्लेष्म कला (Mucous Membrane) रहती है जिसके सबसे आन्दर के स्तम्भाकृति सैलों पर रोंगटे या Cilia रहते हैं । यह ४-५ cricoid cartilage (६-C. vertebra) से आरम्भ होती है sternum के angle (४-D. vertebra) तक आती है ।

श्वासनालियां (Bronchi):- ~~विभक्त होती हुई~~ ३ दाहिनी तथा २ वाम Lobar bronchi शाखाओं में विभक्त होती हुई अन्त में सूक्ष्म श्वास प्रणालिकाओं (Bronchioles) का रूप ले लेती हैं । इनकी रचना भी कण्ठ नाली की तरह ही होती है अर्थात् बाहर तरुणास्थियों से युक्त स्नायुतन्तु का स्तर होता है जिसमें श्लैष्मिक ग्रन्थियां रहती हैं । इसके अन्दर गोलाकृति अनैच्छिक मांस (Bronchial Muscle) का स्तर होता है और अन्दर Bosement Membrane के ऊपर श्लेष्म कला का स्तर होता है जिसके सबसे अन्दर की झिल्ली (Epithelium) स्तम्भाकृति, Cilia से युक्त सैलों, से बनी होती है । इस झिल्ली पर श्लेष्म स्रावी ग्रन्थियों (Mucous Glands) की नालियों के मुख खुलते हैं । Cilia इस श्लेष्म द्रव के स्राव को बाहर की ओर फेंकते रहते हैं । इस प्रकार बाहिर से आये धूल आदि के कणों को ये दोनों मिलकर बाहिर कर देते हैं। श्वास नालियों में शोथ होने पर यह स्राव बढ़ जाता है तब इसे बलगम कहते हैं ।

सूक्ष्म श्वास प्रणालिकाओं की दीवारें प्रधानत: लचकीले स्नायुतन्तु तथा गोलाकृति मांसपेशी से बनी होती है उनमें तरुणास्थियां नहीं होतीं । अन्दर श्लेष्म कला से ढकी होती हैं ।

श्वास प्रणालिकायें विभक्त होती हुई पतली होती जाती हैं। इनकी दीवार लचकीले पतले स्नायुतन्तु (Areolar and Elastic-Tissue) और मांस तन्तु से बनी होती है जिसके अन्दर Cilia से रहित चपटे सैलों से बनी झिल्ली (Epithelium) होती है। ये सूक्ष्म नालियां अन्त में छोटी छोटी वायु से भरी थैलियों में समाप्त हो जाती हैं। जिन्हें वायु कोष्ठक (Alveoli) कहते हैं। इनकी दीवारें एक स्नायु तन्तु की सूक्ष्म झिल्ली से बनी होती हैं जिसमें मांस का अवयव (Muscular Tissue) नहीं रहता। इनके अन्दर चपटे सैलों से बना सूक्ष्म अन्तस्तर (Epithelium) होता है जिसमें Cilia नहीं होते। इन कोष्ठकों तथा इनके गुच्छों के बीच की नालियाँ (Infundibulae) की दीवारों में, ऊपर श्वास नालियों के साथ साथ आई Pulmonary धामनी की सूक्ष्म शाखायें (Capillaries) छाई हुई रहती हैं। जिससे उनका रक्त दोनों ओर कोष्ठान्तर्गत वायु के सम्पर्क में आ जाता है। ये वायु कोष्ठक सूक्ष्म छिद्रों (Pores of Kohn) के द्वारा परस्पर सम्बन्धित रहते हैं।

Pulmonary शिरायें इन उपर्युक्त Pulmonary धामनी की सूक्ष्म शाखाओं में से उत्पन्न होकर पुफुसमूल (Hilum) में से बड़ी श्वास नाली व धामनी के साथ आकर वामग्राहक कोष्ठ में शुद्ध हुए रक्त को लाती हैं।

पुफुस की श्वास नालियाँ आदि के स्नायुतन्तु तथा ग्रन्थियों और रक्त वाहिनियों को रक्त Aorta से Bronchial धामनी के द्वारा पहुंचता है जिसकी शाखायें श्वास नालियों के साथ साथ चलती हैं। इस धामनी की सिराओं में से उत्पन्न हुई सूक्ष्म शिराओं के मिलने से बनी Bronchial Veins के द्वारा यह रक्त वापिस Azygoes तथा Superior Hemiazygos Vein में और वहां से दक्षिण हृदय में आ जाता है। यह रक्त २ प्रतिशतक के लगभग Pulmonary Veins के द्वारा वाम हृदय में भी जाता है।

पुफुस के अन्दर लसीका वाहिनियां एक तो श्वास नालियों की श्लेष्म कला के नीचे और दूसरे इन नालियों के चारों ओर जाल बनाती हुई पुफुस मूल में, Pulmonary रक्त वाहिनियाँ तथा श्वास नालियों के साथ साथ बाहर आकर Tracheobroncial lymph Glands. में समाप्त होती हैं।

पुफुस की नाड़ियाँ Pulmonary Plexus से, जो कि Vagus तथा Sympathetic नाड़ी सूत्रों से बना जाल है,

निकल कर श्वास नालियों के साथ साथ Bronchial Muscle को (Efferent) तथा श्लेष्म-कला में (Afferent) जाती हैं। Vagus नाड़ी श्वास नालियों के लिये संकोचक तथा Sympathetic नाड़ी सूत्र श्वास नालियों को शिथिल करने का कार्य करते हैं। Diaphragm में चेष्टा वाही सूत्र Phrenic नाड़ी के द्वारा जाते हैं। इसमें से संज्ञावाही सूत्र Vagus तथा Phrenic नाड़ी के द्वारा ऊपर जाते हैं। दोनों पुफ्फुसोंमेंसे बांया दो खण्डों दाहिना ३ खण्डों से बना है। ये भी वस्तुत: अनेक उपखण्डों जिन्हें Bronchopulmonary Segments या Lobule (Bronchiole) कहते हैं बने हैं। इनमें से प्रत्येक की अपनी श्वास प्रनाली अपनी ही Pulmonary Artery Vein तथा Bronchial Artery होती है अर्थात् एक उपखण्ड की श्वास नालियों व रक्त वाहिनियों का समीप के उपखण्ड की रक्त वाहिनियों आदि से कोई सम्बन्ध नहीं होता। वस्तुत: इन Segments को पुफ्फुस की इकाई (Units) समझना चाहिये। रोग भी इन उपखण्डों से सीमित रहते हैं।

श्वास स्थान का कार्य - छाती की धौंकनी :-

लोहार की धौंकनी के समान छाती की दीवार में फैलने और सुकड़ने की क्रिया के क्रमिक रूप में जारी रहने से श्वास प्रश्वास का चक्र चलता रहता है। अन्त:श्वास प्रवर्तक मांसपेशियां अर्थात् Diaphragm व External Intercostals में संकोच होने पर पहली पेशी तो नीचे को झुक जाती तथा पसलियां ऊपर और आगे को उठ जाती हैं, अर्थात् छाती की दीवार फैल जाती है। इससे पुफ्फुसों के अन्दर अवकाश हो जाने से बाहर की हवा अन्दर खिंचकर जाती है जिसे अन्त:श्वास कहते हैं। इसके अन्त में उपर्युक्त मांस पेशियों के स्वभावत: शिथिल हो जाने के कारण छाती की दीवार फिर सुकड़ जाती है और पुफ्फुसों के लचकीले होने के कारण अन्दर अवकाश कम हो जाने से अन्दर आई हुई हवा फिर बाहिर निकल जाती है। इसे बहि: श्वास कहते हैं। Pleura की गुहा में हवा के या किसी प्रेशर के न होने से छाती की धौंकनी की यह प्रक्रिया ठीक ठीक चलती रहती है।

पुफ्फुस में हवा की समाई :-

(१) Tidal Air Volume:- साधारण श्वास प्रश्वास में जितनी हवा पुफ्फुसों में अन्दर बाहर जाती है उस तरंगित हवा को Tidal Air कहते हैं। उसकी मात्रा ५०० सी०सी० के लगभग होती है। वायु कोष्ठकों में तो इसके २ भाग ही पहुंचते हैं। तिहाई भाग तो श्वास नालियों में ही समा जाता है (जिसे Dead Space कहते हैं)।

(२) Inspiratory Reserve Volume:-साधारण अन्त:श्वास के बाद ही और अधिकतम जितनी हवा अन्दर ली जा सकती है उस अतिरिक्त अन्त:श्वास को Inspiratory Reserve कहते हैं जिसकी मात्रा १६००-२००० सी०सी० के लगभग होती है ।

(३) Expiratory Reserve Volume:- साधारण वहि:श्वास के बाद और जितनी अधिक से अधिक हवा बाहिर फैंकी जा सकती है उसे अतिरिक्त वहि:श्वास Expiratory Reserve. कहते हैं । इसकी मात्रा १०००-१६०० सी०सी० होती है ।

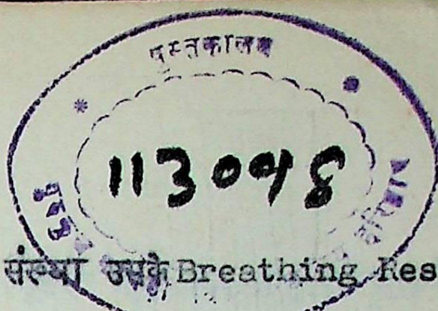
(४) Residual Air Volume:- प्रबल वहि:श्वास के बाद भी जो हवा पुफ्सों में रह जाती है उस स्थायी वायु को Residual Air कहते हैं । उसकी मात्रा १८०० सी०सी० के लगभग होती है । अर्थात् यह Total Lung Capacity के ३० प्रतिशतक के लगभग होती है ।

(५) Vital Capacity:- प्रबल अंत: श्वास के बाद जितनी अधिक से अधिक हवा बाहिर फैंकी जा सकती है उस पुफ्स की भरपुर हवा को Vital Capacity कहते हैं । उसकी मात्रा ४००० सी०सी० के लगभग होती है । अर्थात् यह Total Capacity की ५५-५६ प्र०श० के लगभग होती है।

(६) Total Lung Capacity:- प्रबल अन्त:श्वास लेने पर पुफ्स में जो कुल हवा की समाई होती है उसे Total Lung Capacity. कहते हैं उसकी मात्रा ५५००-६००० सी०सी० के लगभग होती है ।

(७) Maximum Breathing Capacity, Maximum Minute-Ventilation:- एक मिनट के समय में जितनी अधिक से अधिक हवा श्वास प्रश्वास में ली जा सकती है इसे अर्थात् अधिकतम श्वास योग्यता को Maximum Breathing Capacity. कहते हैं । इससे पुफ्सों की सामर्थ्य का पुरा पुरा पता चलता है । साधारणत: पुरुषों में इसकी मात्रा १२५-१५० लिटर तथा स्त्रियों में १०० लिटर होती है ।

(८) Breathing Reserve:- एक मिनट के समय में अधिक श्वास योग्यता अर्थात् Maximum Breathing-Capacity. में से इस संख्या को जितनी की वह एक अवस्था में या रोग के दौरान में एक मिनट में ले रहा है



घटा दिया जाय तो शेष संख्या उसके Breathing Reserve का मापक होती है । जब यह Breathing Reserve उपर्युक्त Maximum Breathing Capacity की मात्रा के ७० फीसदी के लगभग उतर जाती है तब पहले पहल श्वास कृच्छ्रता का लक्षण प्रकट होने लगता है ।

(९) Resting Breathing Capacity- आराम के समय एक मिनट में जितनी हवा श्वास प्रश्वास में ली जाती या छोड़ी जाती है उसे Resting Breathing Capacity कहते हैं । इसकी मात्रा ५-८ लिटर होती है ।

(१०) Index of Mixing या Pulmonary Emptying Rate:- ७ मिनट शुद्ध आक्सिजन के श्वास प्रश्वास लेने के बाद, एक प्रबल बहि:श्वास में निकली हुई हवा में नाइट्रोजन २$\frac{3}{2}$ प्र०श० से कम हुआ करती है । यदि नाइट्रोजन की मात्रा ४-८ प्र०श० हो तो समझा जाता है कि बाहिर की हवा का श्वास कोष्ठों कों की हवा में मिश्रण ठीक नहीं हो रहा है अर्थात् Emphysema. है ।

फुफुसों में बाहिर की हवा तथा रक्त के बीच गैसों का आदान प्रदान :-

हमारी शिराओं के रक्त में कार्बोनिक एसिड गैस का दबाव ४२ मिलिमीटर आफ मर्करी का होता है । यही Pulmonary. धमनी के रक्त में होता है । यह रक्त जब वायु कोष्ठकों की हवा के जिसमें इस गैस का दबाव ३८ मिलिमीटर आफ मर्करी का होता है, सम्पर्क में आता है तो उसमें से यह गैस तब तक बाहर निकलता रहता है जब तक यह वहां ३८ मिलिमीटर आफ मर्करी के दबाव पर नहीं आ जाता । इस प्रकार शरीर की धमनियों के रक्त में भी इस गैस का दबाव ३८ मिलिमीटर आफ मर्करी होता है ।

दूसरी ओर जब शरीर की शिराओं का रक्त जिसमें आक्सिजन का दबाव ५० मिलिमीटर आफ मर्करी होता है । Pulmonary धमनी के द्वारा वायु कोष्ठकों की हवा के कि जिसमें आक्सिजन का दबाव १०३.५ मिलिमीटर आफ मर्करी का होता है सम्पर्क में आता है तो आक्सिजन उसकी ओर तब तक आती रहती है जब तक उसमें भी उसका दबाव लगभग इतना ही न हो जाय । परन्तु धमनियों के रक्त में आक्सिजन का दबाव ९४.२ मिलिमीटर आफ मर्करी ही पाया जाता है । इस कमी का कारण एक तो Bronchial --

Veins. में से कुछ रक्त का आ जाना, दूसरा कुछ एक वायु कोष्ठकों में वायु का न प्रवेश करना है । इस दबाव में रक्त के Haemoglobin में ९८ प्र०श० आक्सिजन हो जाती है । अर्थात् रक्त में ९८ प्र०श० Oxyhaemoglobin. तथा २ प्र०श० Reduced Haemoglobin रहता है । हां यदि वायु कोष्ठकों की हवा में आक्सिजन का दबाव १४०-१५० मिलीमीटर आफ मर्करी हो जाय तो रक्त का Haemoglobin भी १०० प्र०श० Oxyhaemoglobin हो जाय ।

श्रम के समय पुफुसों की अतिरिक्त शक्ति :-

व्यायाम या शारीरिक श्रम के समय में जब शरीर को आक्सिजन की मात्रा साधारणत: आवश्यक मात्रा (३०० सी०सी०) की अपेक्षा १०-१५ गुणा अधिक अपेक्षित होती है तब पुफुस भी हवा को १०-१५ गुणा मात्रा में अपने अन्दर समा लेते हैं जिससे मनुष्य को आक्सिजन की कोई कमी नहीं रहती । हां पुफुस में दक्षिण हृदय से प्रति मिनट आने वाली रक्त की मात्रा (जो ५.४ लिटर होती है) १०-१५ गुणा नहीं बढ़ सकती वह सम्भवत: ६ गुणा तक हो सकती है । व्यायाम के समय शरीर के अवयव आवश्यकतानुसार धमनियों के रक्त में से अधिक आक्सिजन ले लेते हैं जिससे पुफुस में रक्त के १२ गुणा न होने पर भी अवयवों को कोई कमी नहीं रहती । यद्यपि पुफुसों में वापिस आने वाले Pulmonary धमनी के रक्त में आक्सिजन की कमी अधिक अधिक होती जाती है । (वह अधिक Unsaturated होता जाता है) ऊपर कहा गया है कि पुफुसों की हवा में तथा धमनियों के रक्त के अन्दर आक्सिजन के दबाव में लगभग ९.३ मिलिमीटर आफ मर्करी का अन्तर रहता है । व्यायाम काल में यह अन्तर और बढ़ कर १६ मिलिमीटर आफ मर्करी के लगभग हो जाता है । इसे (१०३.५ - ९४.२ = ९.३ मि०मी०आफ मर्करी) Alveolar-Arterial Oxygen-Gradient. कहते हैं । आशय यह है कि पुफुसों में श्रम के लिये पर्याप्त अतिरिक्त अवयव (Reserved Tissue) रहता है । यहां तक कि एक पुफुस के खराब हो जाने या निकल जाने पर भी दूसरे पुफुस से कोई व्यक्ति अपना सारा कार्य भलीप्रकार चला सकता है ।

श्वास की तीव्रता -

Medulla के निम्न जालाकार से प्रदेश में चतुर्थ Ventricle के फर्श के नीचे आगे श्वास और पीछे प्रश्वास का केन्द्र होता है । इनमें से प्रत्येक की उत्तेजना से क्रमश: श्वास तथा प्रश्वास का चक्र चलता रहता है । श्वास केन्द्र की उत्तेजना से उत्पन्न अन्त:श्वास

के दौरान में फुफ्फुस में से संज्ञायें Vagus नाड़ी सूत्रों द्वारा ऊपर श्वास केन्द्र में जाती हैं जिससे अन्त:श्वास की क्रिया का शमन (Inhibition) हो जाता है और वहि:श्वास की क्रिया आरम्भ हो जाती है। फिर इसी प्रकार वहि:श्वास के दौरान में उसकी निरोधक संज्ञाओं के ऊपर केन्द्र में जाने से उसमें शमन हो जाता और अन्त:श्वास की क्रिया आरम्भ हो जाती है। इस प्रकार फुफ्फुस में होने वाले श्वास प्रश्वास के शामक और प्रवर्तक Reflex को Hering-Breuer Reflex कहते हैं जो कि Vagus नाड़ी के द्वारा कार्य करता है।

धमनियों के रक्त में कार्बोनिक एसिड गैस का जो दबाव होता है प्रधानत: वह श्वास केन्द्र पर श्वासोत्तेजक या श्वास शामक प्रभाव डालता है। जैसे ऊपर कहा गया है श्वास कोष्ठकों की वायु में व धमनियों के रक्त में इस गैस का दबाव ३८ मिलिमीटर आफ मर्करी होता है। (अर्थात् इसमें यह गैस ५ प्र०श० होती है) इस अवस्था में साधारण श्वास प्रश्वास गति रहती है। इसमें वृद्धि होने से श्वास प्रश्वास गति तीव्र हो जाती तथा इसमें कमी हो जाने से श्वास प्रश्वास गति मन्द हो जाती है।

इसके अतिरिक्त फुफ्फुस में तथा धमनियों के रक्त में आक्सिजन के दबाव के कम हो जाने से भी श्वासगति तीव्र हो जाती है। उसकी कमी के कारण Carotid Bodies तथा Aortic Body (Chemoreceptors) में विद्यमान संज्ञासूत्र उत्तेजित हो जाते हैं और इनकी उत्तेजना से श्वास प्रश्वासगति तीव्र हो जाती है। इसी प्रकार रक्त में अम्लीयता की वृद्धि हो जाने से भी श्वास प्रश्वास गति तीव्र हो जाती है। धातुओं में होने वाले पचन कर्म (Metabolism) के मन्द होने से श्वास प्रश्वास गति मन्द हो जाती है, उसके तीव्र हो जाने से तीव्र हो जाती है।

श्वास रोग :- Asthma; Bronchial Asthma:

श्वास नालियों के नाड़ी सूत्र :- (Nerves)

श्वास प्रणालियों तथा प्रणालिकाओं (Bronchi तथा Bronchioles) में जैसे ऊपर कहा गया है दो प्रकार के नाड़ी सूत्र आते हैं। एक तो Medulla में स्थित Dorsal Nucleus of the Vagus से निकले गतिवाही सूत्र हैं जिन्हें Para Sympathetic कहते हैं तथा उत्तेजित होने पर इनके सिरों (Post Ganglionic Fibres) से Acetyl Choline की उत्पत्ति होती है। इसलिये इन्हें Cholinergic

भी कहते हैं । इनके उत्तेजित होने पर एक तो श्वास प्रणालियों के वृत्ताकार मांस (Circular Muscles) में संकोच (Constriction) उत्पन्न हो जाता है । दूसरा इनकी श्लेष्म कला की रक्तवाहिनियां शिथिल होकर फैल जाती हैं जिससे श्लेष्म कला फूल जाती है । तीसरा श्लेष्म कला की श्लेष्म ग्रन्थियाँ (Mucous Glands) से होने वाले स्राव की मात्रा बढ़ जाती है । यह इतनी बढ़ती है कि श्वास नालियों के अन्दर के मार्ग के तंग हो जाने से सांस घुट जाता है । इस प्रकार ये सूत्र श्वास प्रणालिकाओं के मार्ग को तंग कर देने (Broncho-constriction या Broncho-spasm) का कार्य करते हैं । Pilocarpine, Physostygmine, Acetylcholine, Histamine. आदि इनके उत्तेजक होते हैं एवं श्वास नालियों के संकोचक होते हैं । बाहर की शीतल वायु भी नालियों के लिये संकोचक होती है ।

इन नाड़ी सूत्रों के अतिरिक्त Sympathetic-- नाड़ी सूत्र भी तीसरे, चौथे Thoracic Spinal Roots. से निकल कर श्वास प्रणालियों में फैले हुये हैं । इनके उत्तेजित होने पर श्वास प्रणालियों का मांस शिथिल हो जाता है । जिससे ये फैल जाती हैं । इनकी श्लेष्म कला में विद्यमान रक्त वाहिनियां संकुचित हो जाती हैं । इसलिये इन सूत्रों को Bronchodilators या Bronchorelaxant कहते हैं । इनके उत्तेजित होने पर इनके सिरों (Post Ganglionic Fibres) से Adrenaline की उत्पत्ति होती है । अतः इन्हें Adrenergic भी कहते हैं । Adrenaline, Ephedrine, Atropine. आदि द्रव्य इन सूत्रों के उत्तेजक होते एवं श्वास नालियों को फैलाने का कार्य करते हैं । जब किसी व्यक्ति में श्वास प्रणालियों का मार्ग सहसा तंग हो जाता है तथा उसके कारण श्वास कोष्ठ को (Air Vesicles) में थोड़ी देर के लिये हवा अधिक मात्रा में भर जाती है तब श्वास रोग होता है । क्योंकि श्वास नालियों के तंग हो जाने से तथा श्वास कोष्ठकों में हवा के भर जाने से श्वास लेने तथा बाहिर फेंकने दोनों में कृच्छ्रता (Dyspnoea) का लक्षण हो जाता है । इसे कृच्छ्र श्वास कहते हैं । इस रोग के वेग के समय मृत हुये व्यक्ति के परीक्षा करने से पता लगता है कि इस रोग में श्वास नालियों की श्लेष्म कला फूल जाती है । उसके अन्दर के अवयवों में Eosinophils, Lymphocytes तथा Plasma सेल भर जाते हैं । उसकी Basement Membrane तथा Submucous Layer भी फूल जाती हैं । श्लेष्म ग्रन्थियां (Mucous Glands) सूज जाती हैं तथा उनमें

से निकलने वाले स्राव की मात्रा बहुत बढ़ जाती है तथा श्वास नालियाँ का मांस भी स्थूल (Hypertrophied) होता तथा बीच का मार्ग संकुचित हो जाता है। इस प्रकार Parasympathetic नाड़ियों के विक्षोभ Vagotonicity का लक्षण अर्थात् श्वास प्रणालिकाओं के बीच के स्रोत का बलगम के द्वारा बन्द हो जाना तथा उसका तंग हो जाना अर्थात् श्वास नालियों में स्तम्भ हो जाना इस रोग में पाया जाता है।

कारण :-

क्योंकि यह रोग वंश परम्परा से चलता है इस लिये श्वास नालियों की मांस पेशियों की या उनके उपर्युक्त केन्द्र Broncho Constrictor Centre की निर्बलता या विक्षोभशीलता जन्म से ही आती प्रतीत होती है जिन परिवारों में नाड़ी मण्डल की निर्बलता (Neuropathic ~~Diathesis~~ Diathesis) पायी जाती है उनमें किसी में शीत पित्त (Urticaria), किसी व्यक्ति में Hysteria, किसी में अपस्मार (Epilepsy) और किसी में श्वासरोग होता है। अर्थात् नाड़ी मण्डल या मस्तिष्क सम्बन्धी सहज निर्बलता इस रोग का प्रधान कारण है। नाड़ी मण्डल की इस सहज अक्षमता (Nervous Instability) के कारण ही यह रोग बालपन या प्रारम्भिक युवावस्था में ही प्रकट हो जाता है। ऐसे व्यक्तिओं में यदि जुकाम बारम्बार होता रहे, Adenoids या Tonsillitis चिरस्थायी रूप में रहें, या उसे खांसी होती रहे; तो इनके कारण श्वास नालियाँ या Bronchoconstrictor केन्द्र की विक्षोभ शीलता के बढ़ जाने से श्वास रोग प्रकट हो जाता है। इस प्रकार मेडुल्ला में विद्यमान Vagus के Nucleus या श्वास नालियों की नाड़ीयों के विक्षोभ शील होने के कारण ऐसे विक्षोभ जो अन्य साधारण जनों के लिये हानिकारक नहीं होते, श्वास रोगी के लिये श्वास जनक हो जाते हैं। उदाहरणत:-

१.. मानसिक विक्षोभ से जैसे किसी तीव्र गन्ध से या किसी प्रकार की चिन्ता, व्याकुलता या असमर्थता (Frustration, Fatigue) से Vagus Nucleus विक्षुब्ध हो उठता है। बहुधा बालक या युवक के मन में कोई स्पष्ट या अस्पष्ट विक्षोभ होता है जो इस Nucleus को विक्षुब्ध कर देने का कारण बन जाता है। मानसिक विक्षोभ या तो ऊपर मस्तिष्क के किसी केन्द्र से आता है।

२.. दूसरा नीचे से आये विक्षोभ Peripheral Irritation से भी Vagus का Nucleus जो पहले से निर्बल हो, विक्षुब्ध हो सकता है।

Vagus के संज्ञावाही सूत्रों (Afferent Fibres) के द्वारा प्रबल विक्षोभ नासिका से श्वास नालियों से तथा अन्त्र आदि से आकर इस Nucleus को विक्षुब्ध कर सकते हैं। उदाहरणतः नासिका तथा श्वास मार्ग में बाहर से आये विक्षोभक धूल, धूम, शीत, हवा आदि के कारण या इनमें उत्पन्न शोथ के कारण या बाहर से आये किसी विरोधी प्रोटीन जैसे पौधों के पराग या घर की धूल में विद्यमान प्रोटीन से विक्षोभ होकर वह ऊपर प्रदिप्त (Reflex) हो जाता है और इसे विक्षुब्ध कर देता है। इसी प्रकार आंत में विद्यमान नाना प्रकार के विक्षोभ भी Vagus से संज्ञावाही सूत्रों (Afferent Fibres) द्वारा इसे विक्षुब्ध कर सकते हैं। अर्थात् आंत में अजीर्ण जनित विक्षोभ से या कृमियों के होने से भी यह रोग हो सकता है। रक्त के द्वारा श्वास नालियों में आये विक्षोभक द्रव्यों से भी श्वास हो सकता है। जैसे Acetyl-Choline, Histamine का इंजेक्शन देने पर हो जाता है।

Allergy के कारण श्वास रोग :-

कभी कभी श्वास मार्ग की श्लेष्म कला में किसी एक प्रोटीन के लिये सहज असात्म्यता या अक्षमता (Allergy) इतनी प्रबल होती है कि वह उस विरोधी द्रव्य को स्वल्प मात्रा में भी सहन नहीं कर सकती। यदि किसी परिवार में शीतपित्त (Urticaria) अर्धावभेदक (Migraine) आदि रोग हों तो उसमें हुए श्वास रोग को भी Allergy के कारण से उत्पन्न होने वाला समझना चाहिये। इस प्रकार की Allergy को उत्पन्न करने वाले द्रव्य को जो कि रोगी में विष का सा कार्य करता है Allergen कहते हैं। हवा में उड़कर आने वाले घास के पराग, घरेलू पशुओं की त्वचा से झड़ने वाले छिलके तथा घर की धूल में पाये जाने वाला प्रोटीन, मशीनों में उड़ने वाले आटे की धूल, ये सब नासिका तथा श्वास नालियों की श्लेष्म कला में प्रविष्ट होकर Allergen या विरोधी प्रोटीन का कार्य करते हैं। कभी कभी गेहूं, अण्डे, दूध, दालों आदि के अजीर्ण से उत्पन्न कोई प्रोटीन (सम्भवतः पेप्टोन, या पेप्टाइड प्रकृति के) पदार्थ भी रक्त के द्वारा श्वास नालियों में या मेडुल्ला में पहुंच कर विपरीत द्रव्य या विषैले द्रव्य का सा कार्य करते हैं। या Aspirin आदि किसी औषधि से या शरीर में विद्यमान किसी जीवाणु से उत्पन्न एक द्रव्य के रक्त द्वारा श्वास नालियों में जाने से यह रोग हो सकता है। अर्थात् कभी कभी Allergen रक्त के द्वारा श्वास स्थान में पहुंचता है। श्वास नालियों के लिये इसके विरोधी द्रव्य होने

के कारण उनमें Anaphylactic Antibody या Precipitin उत्पन्न हो जाता है। श्लेष्म कला में ही नहीं, पर Serum और त्वचा में और अनैच्छिक मांस पेशियों में भी यह Antibody उत्पन्न हो जाता है। फिर जब जब वह Allergen(Antigen) जिसके विपरीत यह Antibody, उत्पन्न हुआ है, दुबारा श्वास नालियों में पहुंचता है तो उसके तथा इस Antibody की परस्पर प्रबल प्रतिक्रिया (Reaction या Precipitation) से श्लेष्म कला के अवयव टूटते हैं और उन टूटे (Necrosed) हुए अवयवों में विद्यमान Histidine नामक Amino Acid, उसमें से Co_2 के निकल जाने पर, Histamine नामक द्रव्य में परिवर्तित हो जाता है अथवा वहां की Nerves और Ganglia में विद्यमान Choline नामक द्रव्य Acetyl Choline में परिवर्तित हो जाता है। ये द्रव्य श्वासनालियों के मार्ग को तंग कर देने वाले (Vagotonic या Broncho Constroctor) होते हैं जिससे रोगी को श्वास का दौरा आरम्भ हो जाता है। बाजार में ऐसे प्रोटीन Allergens के जोकि इस रोग के करने वाले कहे जाते हैं Solutions [redacted] मिलते हैं। उनकी अति स्वल्प मात्रा [redacted] .०१ सी०सी० की मात्रा अग्रबाहु के अग्रिम पृष्ठ की [redacted] त्वचा में डालकर देखा जाता है कि उनमें से कौन सा प्रोटीन रोगी के लिये Positive है। जिसके इंजेक्शन से १०-१५ मिनट के अन्दर ५ मिलिमीटर व्यास का मण्डल वहां उत्पन्न हो जाता है, उसे रोगी के लिये Allergen [redacted] समझा जाता है। दूसरों का कथन है कि Allergy के कारण श्वास नालियों की श्लेष्म कलागत ग्रन्थियों के स्राव के अत्यधिक मात्रा में निकलने से श्वास नालियों में अवरोध हो कर श्वास काठिन्य होता है। श्वास नालियों की दीवार में तथा रक्त में Eosinophils की वृद्धि, श्वास नालियों की सिराओं की शिथिलता, उनसे रक्त के अधिक परिस्रवण से उत्पन्न श्लेष्म कला का श्वयथु (Oedema), और श्वास नालियों के स्रोत की स्राव से परिपूर्णता इन सबके कारण श्वास काठिन्य होता है।

लक्षण :-

श्वास रोग वेगों में होता है। वेग के प्रारम्भ होने से पहले कभी कभी कोई पूर्व रूप नहीं होता। कभी कभी मानसिक विक्षोभ शीलता या नाक में कुछ खुजली सी होने, छींकों के आने या पेट में कुछ अफारे या अजीर्ण के होने का पूर्वरूप होता है। इस रोग का वेग प्राय: रात के पिछले भाग में सोते हुये जब कि Sympathetic System [redacted] स्वभावत: अति मन्द (Depressed) हुआ करता है, होता है। सहसा

श्वास प्रणालियों में संकोच हो जाने से श्वास वायु के आने जाने में अवरोध उत्पन्न हो जाता है। रोगी को अपना दम घुटता प्रतीत होता है। लेटे लेटे सांस नहीं आता, अतः वह उठकर बैठ जाता है। बैठने से भी आराम नहीं आता। तो दोनों हाथों को टेक कर आगे की ओर झुक कर श्वास सहायक मांस पेशियां (Accessory Muscles of Respiration जैसे Sterno-mastoid, Scalenes, Pectorals) की सहायता से बलपूर्वक श्वास लेने का यत्न करता है। श्वास लेने में भी उसे कठिनता होती है पर क्योंकि अन्तः श्वास एक बलशाली (Active) कर्म है इसमें उसे उतनी कठिनता नहीं होती, जितनी श्वास वायु को बाहर फेंकने में होती है क्योंकि यह एक निर्बल (Passive) कर्म होता है। इसलिये इसमें उसे विशेष बल लगाना पड़ता है। यत्न करने पर भी वह बहिःश्वास के द्वारा जितनी हवा बाहर फेंकनी चाहिये नहीं फेंक पाता। इतनी थोड़ी हवा बाहिर जाती है कि बहिःश्वास के बाद भी छाती फूली ही रहती है और अन्तः श्वास के समय इतनी थोड़ी हवा अन्दर जाती है कि छाती फूलती हुई प्रतीत नहीं होती। इसका अभिप्राय यह है कि उस हवा की मात्रा जो श्वास प्रश्वास द्वारा अन्दर बाहर होती है बहुत कम हो जाती है। अर्थात् छाती की Vital Capacity दूसरे शब्दों में गहरे श्वास के बाद बहिःश्वास द्वारा हवा फेंक देने की शक्ति जो ३५ सौ सी०सी० की होती है, घट जाती है और जो हवा अन्तः तथा बहिःश्वासों दोनों के समय छाती में बनी ही रहती है (Residual air) जो कि १८०० सी०सी० के लगभग होती है, उसकी मात्रा बहुत बढ़ जाती है। यही कारण है कि एक ओर तो रोगी श्वास लेने और फेंकने के लिये व्याकुल रहता एवं थक जाता है, दूसरी ओर आक्सिजन के कम मिलने से उसका चेहरा कुछ फीका सा पड़ जाता है। बल पूर्वक श्वास लेने से अन्तः तथा बहिःश्वास के साथ आवाज (Wheezing) उत्पन्न होती है जो समीप खड़े व्यक्ति को भी सुनाई पड़ती है। इस प्रकार इस Dyspnoea का कारण आक्सिजन की कमी तथा Co_2 का अंदर रुक जाना प्रतीत होता है। यह श्वास रोग का वेग आधा, एक या दो घन्टे तक रहकर स्वयं शान्त हो जाया करता है। यह श्वास कृच्छ्रता के साथ आरम्भ होता है और खांसी के साथ समाप्त होता है। वेग के आरम्भ होने के कुछ काल बाद खांसी, आरम्भ होती है जिसमें पहले थोड़ी तथा कुछ पतली बलगम निकलती है। उत्तरोत्तर खांसी बढ़ती जाती है और बलगम भी मात्रा में अधिक तथा गाढ़ी होती जाती है। खांसी द्वारा श्वास नालियों में संचित हुये बलगम के निकल जाने के साथ साथ श्वास का वेग कम होते होते शान्त हो जाता है। रोगी की परीक्षा करने पर उसकी श्वास गति या,

उससे रोगी बेचैन में अधिक चिन्तित दीखता है। हृदयरोगजनित श्वास रोग में Adrenaline, Ephedrine आदि का प्रयोग करने से जो रक्तभार पहले ही बढ़ा होता है वह और बढ़ जाता है अतः इस योग का श्वास रोग में न करना अत्यावश्यक है।

श्वास प्रश्वास की प्रति मिनट संख्या कम ही होती है । श्रवण यंत्र द्वारा सुनने से अन्त:श्वास तथा बहि:श्वास के साथ सीटियाँ (Rhonchi) की आवाज (Sonorous तथा Sibilent) सुनाई पड़ती है । बहि: श्वास, अन्त:श्वास की अपेक्षा दीर्घतर सुनाई पड़ता है । Vocalresonance. घटी हुई सुनती है । पुफ्फुसों में हवा के अधिक मात्रा में भरे होने के कारण छाती पर टकोर की आवाज ऊंची होती है । नाड़ी छोटी तथा गति में तीव्र होती है । रक्त भार कम होता है । रक्त में Eosinophils ५ या १० प्रतिशतक होते हैं । थूक में भी ये पाये जाते हैं । श्वास कृच्छ्रता दीर्घकाल तक लगातार बनी रहे तो इसे status asthmaticus कहते हैं ।

भेदक लक्षण :-

हृदय जनित श्वास (Cardiac Asthma) का दौरा जो रात को होता है, उससे इस रोग का सन्देह हो सकता है । परन्तु वह रोग पहली रात में होता है । ४५-५० वर्ष की आयु के बाद होता है । जबकि श्वास रोग बड़ी आयु में आरम्भ नहीं होता, उसके वेग में श्वास कृच्छ्रता तथा खांसी के लक्षण प्रारम्भ से ही साथ साथ रहते हैं । श्वास में कृच्छ्रता कम पर तीव्रता विशेष होती है । उसमें बलगम भी पतली निकलती है तथा पुफ्फुस के निम्न भाग में द्रव के भर जाने (Oedema) के कारण उसमें Rales सुनाई पड़ते हैं, Rhonchi नहीं । उसमें रक्त भार भी बढ़ा हुआ होता है । नाड़ी भरी हुई, दीर्घ (Bounding) होती है । छाती में हवा न भरे होने से वह फूली हुई (Emphysematous) नहीं होती प्रत्युत दबी हुई होती है, बहि:श्वास भी अन्त:श्वास की अपेक्षा लम्बा नहीं होता ।

साध्यासाध्य तथा उपद्रव :-
----

२० वर्ष से पहले बाल्यावस्था में आरम्भ हुआ श्वास रोग बहुधा स्वयमेव अच्छा हो जाता है परन्तु २५ वर्ष की आयु के बाद आरम्भ हुआ ठीक नहीं होता । रोग के वास्तविक कारण के निवारण करने पर उसे भी ठीक किया जा सकता है । जब श्वास रोग चिरस्थायी रूप में रहता है तब यह अवस्था रहती है पुफ्फुस में अधिकाधिक हवा के भरे रहने के Emphysema कारण पुफ्फुस धमनियों या Pulmonary Arteries के सामने रुकावट बढ़ जाती है जिससे दक्षिण हृदय पर अधिक कार्यभार आ पड़ता है । पहले उसमें अति वृद्धि (Hypertrophy) हो जाती है और आयु के बढ़ने के साथ साथ या शरीर की प्राण शक्ति के घट जाने पर फिर उसमें शिथिलता (Dilatation या Failure) का उपद्रव होकर मृत्यु हो सकती है । रोगी की परीक्षा में नासिका, गले,

रोगी को शीतजल के स्नान से तथा शीत हवा के लगने से बचना चाहिए तथा रात को बहुत हलका और थोड़ा आहार लेना चाहिए

दांत, आंत, मूत्र मार्ग में पूय भाव Sepsis की जांच करनी चाहिये। पुफुस की Vital Capacity देखनी चाहिये, थूक की परीक्षा करनी चाहिये। भिन्न भिन्न प्रोटीन्स की त्वचा में होने वाली प्रतिक्रिया देखनी चाहिये। (श्वासमार्ग में किसी infection के कारण से यह रोग होता हो तो शीतकाल में इसके वेग होते हैं। Pollens के कारण रोग यदि होता हो तो ग्रीष्म ऋतु के आरम्भ में इसका वेग होता है।)

श्वास रोग की चिकित्सा :-

रोग प्रतिरोधक चिकित्सा :-

प्रथम तो सामान्य शारीरिक तथा नाड़ी संबंधी दुर्बलता को दूर करने के लिये रोगी को खुली हवा में दोनों समय मृदु व्यायाम, मालिश अथवा भ्रमण करना चाहिये। घृत, मक्खन, बादाम, रोगन, फल, सब्जी तथा Vitamin A और D (Adexolin Cap.or Liq.) का सेवन करना चाहिये। प्रतिदिन आधा या एक औंस ग्लूकोज या मधु तथा कैल्सियम भी लेना चाहिये। मस्तिष्क तथा नाड़ी मण्डल की निर्बलता के लिये Caffeine Citrate २ ग्रेन दिन में दो बार दी जा सकती है। दूसरा यदि कोई पारिवारिक, आर्थिक या परीक्षा सम्बन्धी किसी प्रकार की चिन्ता हो या कोई मानसिक समस्या या कठिनता रोगी के मस्तिष्क पटल पर छिपी हुई हो तो उसका पता लगा कर उसे दूर करने का यत्न करना चाहिये। रोगी के मन पर पड़े हुये बोझ को दूर करने से Bronchoconstrictor Centre भी शान्त हो जाता है। मन को बहलाने वाले सर्व भाव इस रोग को शान्त करने में सहायक होते हैं। Phenobarbitone $\frac{1}{2}$ ग्रेन की मात्रा में दिन में दो बार लेने से मानसिक विक्षोभ शांत रहता है।

नासिका तथा श्वास मार्ग में शोथ रहे अथवा नासा मार्ग के विक्षुब्ध रहने से श्वास रोग होता हो तो धूंएं, धूल आदि से सदा बचना चाहिये। जब घर में सफाई का समय हो, घर से बाहर निकल जाना चाहिये। इसी प्रकार शरीर को गर्म होने के बाद सर्द होने से बचाना चाहिये अर्थात् धूप में जाने, गर्म जल से स्नान करने तथा व्यायाम के बाद शीत वायु, शीत जल पान आदि से बचना चाहिये। नमी वाले तथा शीत प्रदेश में रहने से नासा मार्ग तथा श्वास मार्ग में शोथ हो सकता है। शुष्क तथा उष्ण प्रदेश तथा ऋतु में नासा मार्ग तथा श्वास मार्ग का शोथ शान्त हो जाता है। नासिका को विक्षोभों से बचाने के लिये नार्मल सेलाइन से अथवा नार्मल सेलाइन १ औंस में १२ ग्रेन ग्लूकोज तथा ४ ग्रेन Ephedrine मिला के उससे नाक को प्रतिदिन एक दो बार धोते रहना चाहिये। अथवा Liquid Paraffin में १ आधा प्रतिशतक Menthol, Eucalyptus

Oil तथा Chloretone मिला इसे नाक में डालते रहना चाहिये। आंतों में अजीर्ण, मलबन्ध, अमीबिका, प्रवाहिका के कारण विक्षोभ रहता हो तो पाचक दीपक तथा लघु स्रंसक औषधियों का प्रयोग करना चाहिये। श्वास मार्ग में कहीं पर चिरस्थायी शोथ रहता हो तो उसके दूर करने के लिये Penicillin का प्रयोग करना चाहिये। रोगी के पुफुस के अन्दर हवा अधिक मात्रा में भरी रहती है (उसे Emphysema रहता है) इसके दूर करने के लिये उसे खुली हवा में प्रातः सांय दो बार १५ मिनट प्राणायाम करना चाहिये। जिसमें गहरा श्वास लेने पर बल न देकर, बहिःश्वास के समय, बलपूर्वक या छाती के निम्न भाग को हाथों से दबाकर भी हवा को बाहर फेंकने पर बल देना चाहिये। पुफुस को अधिक से अधिक शुद्ध हवा मिलती रहे इस बात का ध्यान रखना चाहिये। भीड़ भाड़ में तथा बन्द कमरों में जैसे सिनेमा घरों में जाने से बचना चाहिये। रात को भी कमरे की खिड़कियां खोलकर सोना चाहिये। तथा दूसरों की चारपाई से सात आठ फुट की दूरी पर सोना चाहिये। सोते समय जब श्वास गति मन्द हो जाती है और पुफुसों के मिलने वाली शुद्ध हवा की मात्रा कम हो जाती है तभी यह रोग प्रारम्भ होता है। अतः पुफुसों को अधिक से अधिक शुद्ध हवा मिलती रहे इस बात का ध्यान रखना चाहिये। सीधा बैठने तथा कसी हुई चारपाई या तख्त पर सोने से भी पुफुसों में हवा का आवागमन ठीक होता रहता है। यदि कोई Allergen नाक के द्वारा प्रविष्ठ होकर इसरोग को उत्पन्न करता हो अर्थात् ऋतु परिवर्तन के समय हवा से आया पराग इस रोग का कारण हो या गृह धूल से इस रोग का वेग होता हो या किसी कारखाने में अनाज आदि की उड़ने वाली धूल से यह रोग होता हो तो उससे बचना चाहिये या इनके बने हुये Solutions के अति स्वल्प मात्रा में Intradermal - Injections. ले लेने चाहिये। भोजन द्रव्यों में से कोई Allergen. का कारण होतो इसका पता लगाने के लिये रोगी को विरेचन देकर पहले केवल सन्तरे आदि किसी फल तथा दूध पर तीन दिन रखना चाहिये। यदि इस भोजन से रोग न हो तो दूध में चावल का आटा या गेहूं मिला के तीन चार दिन देना चाहिये। इस प्रकार प्रतिदिन काम आने वाले भोजन द्रव्यों में से एक एक को बढ़ाते हुये पता लगाना चाहिये कि कौन सा पदार्थ Allergen का कारण है। उसका प्रयोग बन्द कर देना चाहिये अथवा उसे अति स्वल्प मात्रा में सेवन करना चाहिये या Promethazine Hydrochlor,(Phenergan) २५ मिलि० दैनिक मात्रा में देना चाहिये। Non-Specific-Desensitization. से अर्थात् किसी प्रोटीन पदार्थ जैसे Peptone-

Milk. तथा Autohemotherapy १-१० सी०सी० के सप्ताह में २ बार मांस द्वारा देने से इस रोग में थोड़ा ही लाभ होता है, विशेष स्थायी लाभ नहीं होता । केल्सियम (Calci Ostelin) के त्वचा द्वारा कुछ दिन देने से भी रोग के वेग के होने का भय नहीं रहता ।

श्वास वेग की शामक चिकित्सा :-

वेग के आरम्भ होते ही Adrenalin Hydrochloride १००० में १ की ताकत की १-२-३ बुन्द त्वचा के नीचे दे दी जायें और फिर २०-३० मिनट के अन्तर से ऐसी दो तीन मात्रा दे दी जायें या एक एक बुन्द प्रति दो दो मिनट पर दे दी जाय तो सम्भवत: Allergy से उत्पन्न श्वास नालीगत श्वयथु (Oedema) की शान्ति से या स्राव शोषक होने से तीन चार घन्टों के लिये वेग शान्त हो जाता है । इसके Sympathetic नाड़ी मण्डल के उत्तेजक होने से भी श्वास नाली प्रसार (Bronchodilatation) होकर रोग शान्त होता प्रतीत होता है । वेग के समय रोगी को ग्लूकोज से मीठा किया हुआ गर्म जल पिलाते रहना चाहिये । पैरों पर गर्म बोतलों के रखने से तथा प्याले गर्म काफी पीने से भी वेग शान्त होता है । यदि Adrenaline in Oil (५००-१) को ३-८ बुन्द की मात्रा में मांस द्वारा दे दिया जाय तो रोग का वेग १२ घन्टों के लिये शान्त हो जाता है । बड़ी आयु के व्यक्ति में जब पहले ही रक्त भार बढ़ा हुआ हो हृदय आकार में बड़ा हो गया हो या हृदय शूल Angina का लक्षण भी हो तो इस औषध का प्रयोग अधिक नहीं करना चाहिये । Riddobron (Riddell) या Rybarvin (Rybar) शामक औषधि के सूंघने से भी वेग शान्त हो जाता है अथवा Ephedrine ३।४ ग्रेन के मुख द्वारा लेने से वेग शान्त हो जाता है । Caffeine Iodide Elixir के एक चम्मच की मात्रा में लेने से भी आराम आ जाता है । Phenobarbitone. $1\frac{1}{2}$ ग्रे० के देने से भी वेग शान्त हो जाता है । Isoprenaline-Sulph. (Neoepinine Isoprenal B.I.) Isopral, या Aleudrin या Isupren (Isopre. hyd.) के १०-२० मिलि० ग्राम की मात्रा में जिव्हा के नीचे दिन में तीन बार रखने से भी इस रोग का वेग शान्त हो जाता है या इसके १ प्रतिशतक जलीय घोल के चार चार घन्टे के बाद नासिका में Inhalation-apparatus के द्वारा छिड़कने से या सूंघने से या इसके १०-१५ प्रतिशतक चूर्ण के नस्य द्वारा लेने से श्वास का वेग शान्त हो जाता है । Adrenaline (१००-१) के Nebulizer के द्वारा ·५ सी०सी० मात्रा में नाक में $\frac{1}{2}$-२ घन्टे पर छिड़कने से भी वेग शान्त हो जाता है । Aminophylline (Cardophyllin) ·२५

या 200 मिलि. को 250-500 सी.सी
5%. ग्लूकोज जल में मिलाकर (शिरा द्वारा) 8-12
घंटे के (शिरा द्वारा) दे देने पर

Prednisolone, Ephedrine, Aminophylline, Phenobarbitone [illegible] Asmacort (Indopharma)
Dicatrane Pink (Grimault) Asmac (Wanar) [illegible] Anglo [illegible]

मिलिग्राम को १०-२५ सी०सी० सैलाइन में या ५० प्रतिशतक ग्लूकोज में बहुत धीरे धीरे शिरा द्वारा दे देने पर इस रोग का वेग शान्त हो जाता है। इसको ७½ ग्रेन को गुदावर्ति (सपोजिटरी) को १२-१२ घन्टों बाद गुदा में प्रविष्ट कर देने से या इसके ·५ ग्राम को २०-३० सी०सी० जल में मिला के गुदा द्वारा अन्दर डाल देने से या ·५ ग्राम का बना हुआ सूची वेध मांस द्वारा दे देने से भी वेग शान्त हो जाता है।

Aminophylline ·१ ग्राम या ½ ग्रेन Ephedrine ½ या ¾ ग्रेन Phenobarbitone ¼ ½ Gr. परस्पर मिला के दिन में ३-४ बार देने से भी इस रोग का वेग शान्त होता है। अथवा Phenobarbitone को रात की मात्रा में ही मिलायें या Cholinetheophylline २०० मिलि० मुख द्वारा ३ बार प्रतिदिन देवें Cortisone Acetate (Corlin,-Cortyl) के ५० मिलिग्राम की मात्रा में दिन में पहले ४ बार फिर दिन में ३ बार और फिर २ बार देने से श्वास रोग का प्रबल वेग शान्त हो जाता है। इसके शान्त हो जाने पर इसे १२½ या २५ मिलिग्राम की मात्रा में दिन में २-३ बार ५-७ दिन देना चाहिये। बड़ी आयु में इसका प्रयोग स्वल्प काल के लिये ही करना उचित है। Corticotropin (A.C + H). के २५ मिलिग्राम की मात्रा में दिन में २ बार दो तीन दिन तक मांस द्वारा देने से इस वेग में तुरन्त लाभ हो जाता है। इसे भी एक दो दिन बाद फिर एक बार ही दिया जाता है। लाभ तो इक दो दिन में ही हो जाता है। इसे एक सप्ताह तक दे सकते हैं। या Prednisolone, ५-१०, या Triamcinolone ४, या Dexamethasone(Dexacortisyl) १।२ मिलि० चार बार प्रतिदिन मुख से दें। Khellin (Viscardin-Benecardin) २५-१०० मिलि० मात्रा में २-३ बार दिन में देने से श्वास नालियों का प्रसारक होने से इस रोग में दिया जा सकता है। आक्सिजन के देने से भी श्वास कठिनता दूर होती है। श्वास नालियों में संचित हुये गाढ़े श्लेष्म द्रव को जो इस रोग का कारण मानते हैं वे कफ स्रावक औषधि को हितकर कहते हैं अत: उसे निकालने के लिये कफ स्रावक (Expectorant) औषधि देनी चाहिये। तथा उसी में स्तम्भ शामक (Antispasmodic) औषधियां मिला कर देनी चाहियें। उदाहरणतः Potassium Iodide ३ ग्रेन अथवा इसके स्थान पर Ammonium Chloride ८ ग्रेन, तथा Potassium Bicarbonate १५ ग्रेन, Tincture Lobelia Aetheris १० बुन्द, Tincture Stramonium १० बुन्द, Tincture Hyoscyamus १० बुन्द, Extract Grindelia Liquid ३० बुन्द, Syrup Tolu. १ ड्राम, Aqua १ औंस, ऐसी एक मात्रा दिन में तीन बार एक मास तक पिलानी चाहिये और फिर दिन में एक मात्रा

ही देते रहना चाहिये । वेगों के बीच के काल में वेगों की रोकथाम के लिये किसी कफ प्रावक औषधि के अतिरिक्त Ephedrine $\frac{1}{4}$,$\frac{1}{2}$ ग्रेन, Aminophylline. $1\frac{1}{2}$ ग्रेन तथा मानस विक्षोभ शामक Phenobarbitone. $\frac{1}{4}$,$\frac{1}{2}$ ग्रेन मिला कर प्रति दिन एक दो बार दे सकते हैं । ~~या Amesec. का कैप्सूल रात को दें~~ । रात को Phenobarbitone. $\frac{1}{2}$,१ ग्रे० लेने से ही इसके वेग का भय नहीं रहता । रात को Calcibronate की गोली या एक दो गोली एस्पिरिन की लेने से तथा Calcium (Calciostelin, Collo. Cal.) के सेवन से भी इस रोग का वेग उठना बन्द हो जाता है । रोगी को रात्री का भोजन जल्दी से लेना चाहिये तथा बहुत थोड़ी मात्रा में लेना चाहिये ।

आयुर्वेद में श्वास रोग :-

आयुर्वेदानुसार श्वास रोगी की श्वास नालियें या श्वास नियामक केन्द्र में एक सहज वातिक दुर्बलता या प्राण शक्ति की हीनता रहती है जो शरीर को निर्बल कर देने वाले कारणों से जैसे अति शीत सेवन, चिन्ता, रोगादिजनित निर्बलता, शुक्रनाश आदि से या किसी विक्षोभक विषैले द्रव्य के इन पर दुष्प्रभाव से प्रकट हो जाती है । इस प्रकार जब श्वास नालियाँ, विशेषत: सूक्ष्म श्वास-नालियों में वातिक दुर्बलता या अक्षमता बढ़ी हुई होती है तब उनमें कफ के बढ़ जाने से स्तम्भ का लक्षण उत्पन्न हो जाता है । उनमें स्तम्भ हो जाने अर्थात् श्वास नालियों के मार्ग के संकुचित हो जाने से श्वास कृच्छ्रता का वेग आरम्भ हो जाता है जिसे श्वास रोग कहते हैं । कफ वर्धक या देहाग्नि को न्यून कर देने वाले नाना कारणों से जैसे शीत गुरु स्निग्ध आहारों के अति सेवन और श्रम न करने से जब शरीर में कफ दोष या आम दोष बढ़ जाता है तब श्वास नालियों के स्वभावत: निर्बल होने से यह बढ़ा हुआ कफ दोष वहां पर ही अभिव्यक्त होता है । इसी प्रकार धूल, धूम तथा अन्य विषैले पदार्थों के श्वास वायु द्वारा अन्दर आने या मानसिक विक्षोभों के द्वारा या शरीर की प्राणशक्ति को हीन करने वाले अन्य कारणों के द्वारा श्वास नालियों में वायु प्रकोप विशेष होकर एवं वहां कफ संचय के होने पर यह रोग होता है । इस प्रकार चरक ने श्वास नालियों में वात, कफ दो दोषों की वृद्धि को इस रोग का कारण कहा है । तथा कहा है कि कफ मिश्रित वायु के द्वारा श्वास नालियों

के भिंच जाने से यह रोग होता है।" (चि०।१७।व०।श्लो० ८।१७।२१)

इस प्रकार कफाधिक श्वास रोग तथा वाताधिक श्वास रोग प्रधानतः दो प्रकार का यह रोग होता है। कफाधिक रोगी बलवान तथा वाताधिक दुर्बल होता है। नवीन रोग साध्य है, पुराना हो जाने पर यह असाध्य हो जाता है। रोगी निर्बल हो तो भी यह रोग ठीक नहीं होता।

लक्षण :-

इस रोग का वेग बहुधा रात को होता है। इसलिये इसे आयुर्वेद में तमक श्वास कहा है। सोये हुये रोगी को श्वास लेने के लिये उठकर बैठ जाना पड़ता है। पहले श्वास कृच्छ्रता का लक्षण होता है फिर जब कुछ कफ निकलने लगता है रोग का वेग मन्द होने लगता है। (च०।चि०।१७)

चिकित्सा :-

रोग कफ प्रधान हो, रोगी बलवान हो तो रोगी को पहले मृदु शोधन चिकित्सा करके फिर सन्तर्पण चिकित्सा करनी चाहिये। रोग वात प्रधान हो, रोगी निर्बल हो तो रोगी को पहले से ही संतर्पण चिकित्सा होनी चाहिये। साधारणतः इस रोग की कफ, वात शामक चिकित्सा होती है अर्थात् रोगी को ऐसी औषध देश, काल, आहार विहार आदि मिलने चाहियें जो वायु तथा कफ दोनों के शामक हों। दूसरे शब्दों में जो शरीर को बलिष्ट करने वाले हों, परंतु इतने गुरु शीत स्निग्ध न हों कि देहाग्नि को कम कर देवें। वे इतने लघु, ऊष्ण और रुक्ष भी न हों कि शरीर के अपतर्पक हो जायें। इस रोग में तो कफ की शान्ति की अपेक्षा वायु की शान्ति पर अधिक बल देना चाहिये। (सु०।उ०।५१)

इस प्रकार श्वास रोगी को प्रायः संतर्पक आहार मिलना चाहिये। उसके लिये पुराने चावल, गेहूं, कुलथी, मूंग, जौ, पक्षी मांस, घृत, दूध, मधु, परवल, सोहांजना, बैंगन, मूली, अंगूर, मुनक्के, हींग, लहसुन, त्रिकटु, जीरा तथा गर्म जल हितकर होते हैं। उसे दशमूल या लघु पंचमूल से पकाया हुआ जल पीना चाहिये। तथा लाल मिरच, तेल, खटाई, उड़द, गुड़, तले हुए पदार्थों, शीतल पेयों, दही, छाछ, जलज तथा आनूप मांस के सेवन से बचना चाहिये। बल्य संतर्पक औषधियां, जैसे स्वर्ण, मुक्ता आदि के योग श्वास चिन्तामणि रस, या हेमगर्भ पोटली आदि, श्वास रोगी के लिये हितकर होते हैं। औषधियों में से वासा

का प्रयोग हितकर होता है। वासा हरीतकी, अवलेह, आधा तोला की मात्रा में दो बार देवें या वासादि क्वाथ (वासा, मुनक्का, हरड़, समान-समान, शहद, खाण्ड डालकर) पिलायें। या वासा घृत (वासा क्वाथ १६ घृत ४, वासा पुष्प १ भाग से बना घृत) मधु से चटायें। पुष्कर मुल या कुष्ठ को भी इस रोग के लिये उपयोगी कहा गया है। इसके लिये शृंग्यादि चूर्ण (काकड़ा सिंगी, सोंठ, पिप्ली, पुष्कर मुल, कचुर, मरिच, मोथा समान समान, खाण्ड सर्व तुल्य) अगस्त्य, हरीतकी तथा दशमुलारिष्ट में से किसी का प्रयोग किया जाता है। दशमुलादि घृत (दशमुल २५६ तो०, जल ८ गुणा में $\frac{1}{4}$ कषाय कर उसमें पुष्करमुल, कचुर, तुलसी, बिल्व, त्रिकटु, जटामांसी, हींग १-१ तोला मिलाकर घृत पाक करें) या तेजोवत्यादि घृत (मालकंगनी, कुष्ठ, पुष्कर मुल, गंधतृण, पिप्पली, चीतामूल, वचा, शटी, सौवर्चल लवण, सैन्धव, तालीश पत्र, जीवन्ती, तामलकी, हरीतकी, कटुकी, पलाश प्रत्येक १-१ तोला, हींग $\frac{1}{2}$ तोला, घृत ६४ तोला, जल २५६ तो० घृत बनायें) को १-१ तोला मात्रा में दिन में तीन बार पिलाना चाहिये। वायु प्रधान रोगियों के लिये घृत विशेष उपयोगी होते हैं। जीवनीय घृत भी वायु शामक होने से बड़ा उपयोगी है। काली मिरच भी इस रोग के लिये ठीक है। उसे बराबर मिश्री से मिला थोड़ा थोड़ा दिन में कई बार लेना चाहिये। सोमलता का आसव भी (२० सेर जल में ७$\frac{1}{2}$ सेर गुड़, २$\frac{1}{2}$ सेर शहद, द्राक्षा २ पाव, सोमलता तथा वासा २-२ पाव, धातुर $\frac{1}{2}$ पाव, मधुयष्टी, कंटकारी, कर्कट शृंगी, भारंगी तालिश पत्र, पिप्पली, शुंठी, १-१ छटांक, धातकी २ पाव डालकर बनाया) १-२ तोला की मात्रा में लाभदायक बताया जाता है। चित्रकूट की दवा की एक मात्रा में पिपल की आभ्यन्तर त्वक का चूर्ण १$\frac{1}{2}$ माशा आभ्यन्तर त्वक की बनाई राख १$\frac{1}{2}$ माशा मिली हुई होती है। इस मात्रा को रात १२ बजे तक शरद पुर्णिमा की चान्दनी में लोहे या मिट्टी के पात्र में रखी हुई खीर में मिलाकर खिलाया जाता है। रोगी को दिन भर निराहार रखा जाता है। खीर लेने के बाद जल नहीं पीना चाहिये। यह खीर गाय के एक सेर दुध में २$\frac{1}{2}$ तोला पुराना चावल २$\frac{1}{2}$ तोला मिश्री मिलाकर लोहे की कढाई में बनाई जाती है। खीर लेने के बाद रोगी को घुमने के लिये कहा जाता है। २ मास तक तेल, गुड़, चाय, गुरु भोजन वर्जित हैं। उस दिन तथा रात को निद्रा भी वर्जित है। इस रोग में दूधी को ६ मा० की मात्रा में लेकर श्वेत जीरे ३ माशा के साथ पीस कर छान कर सप्ताह में दो दिन मंगल तथा रतवार को कुछ काल तक पिलाया भी जाता है। सोमल का प्रयोग नाना रुपों में इसरोग में होता है। मल्ल सिंदूर एक एक रती

दिन में ३ बार दिया जाता है । सोमल एक माशा को वंशलोचन तथा मिश्री एक एक तोला में भलीप्रकार मिलाकर इस चुर्ण को एक रत्ती की मात्रा में मलाई के साथ दिन में दो बार दिया जाता है । श्वास कुठार रस भी दो रत्ती की मात्रा में तीन बार प्रतिदिन दिया जाता है जो सोमल का ही एक प्रयोग है । वेग शान्ति के लिये वेग के समय कर्पूर १ रत्ती की गुड़ के साथ बनी गोली कुछ कुछ देर बाद जल से निगलवा दी जाती हैं ।

हिक्का :- (Hiccough या Diaphrgmatic Spasm)

साधारणतः जब श्वास महापेशी (Diaphragm) संकोच करती है तब कंठ कपाट (Glottis) खुला हुआ होता है । जिससे श्वास अन्दर आ जाता है । परन्तु कभी कभी इस मांस में अचानक और असमय पर संकोच हो जाता है और बार बार संकोच (Spasm) होने लगता है और क्योंकि इस संकोच के समय कंठच्छद या कंठ कपाट (Glottis) बन्द होता है और अन्तः श्वास सहसा रुक जाता है, जिससे "हिक" जैसी आवाज उत्पन्न हो जाती है, इसे हिक्का कहते हैं । इस मांस पेशी की नाड़ी (Phrenic Nerve) में विक्षोभ या तो आमाशय या आंत या यकृत् या Diaphragm पर चढ़े Pleura से या उदर (Peritoneum) में से आता है । अर्थात् पेट में या आंत में हवा हो जिससे उनकी दीवार पर दबाव पड़ता हो या Pleura में विशेषतः Diaphragm पर चढ़े उसके भाग में क्षय रोग जनित शोथ हो या यकृत् पर विद्रधि या कैन्सर हो तो हिक्का हो सकती है । आंत में कृमि जनित विक्षोभ हो या मस्तिष्क में किसी प्रकार का विक्षोभ हो जैसे हिस्टीरिया हो या वहां क्षय जनित Meningitis या Encephalitis. जैसा शोथ या वहां अर्बुद हो तो भी Phrenic नाड़ी विक्षुब्ध हो सकती है । बालक में फुफ्फुसावकाश या Mediastinum में विद्यमान लसीका ग्रन्थियों में किसी में क्षय रोग जनित शोथ हो या वृद्ध में इनमें से किसी में कैन्सर जनित शोथ हो तो एक Phrenic नाड़ी विक्षुब्ध हो जाने से हिक्का हो सकती है । चिरस्थायी वृक्क रोग में मूत्र विष संचार (Uraemia) हो जाय, किसी तीव्र ज्वर का विष रक्त में संचार कर जाय, तो भी उस विष के इस नाड़ी पर दुष्प्रभाव से हिक्का हो सकती है पर यह हिक्का कष्ट साध्य होती है ।

चिकित्सा :-

कारण को दूर करना चाहिये । यद्यपि बहुधा इसके कारण का पता नहीं चलता । पेट और आंत में विक्षोभ

के कारण हो तो पिपरमेन्ट जल में ४/५ बुन्द Clones , या Coju-put Oil. में सोडा बाईकार्ब डालकर पिलाने से तथा बस्ति कर देने से आराम आ जाता है। या १ बून्द पिपरमेन्ट के तेल की खाण्ड के साथ दे सकते हैं। Ammonia के सुंघाने से भी श्वास महा पेशी का विक्षोभ शान्त होता है। मस्तिष्क तथा नाड़ी मण्डल के विक्षोभ को शान्त करने के लिये Phenobarbitone १½ ग्रेन मात्रा में मुख से या स्तम्भ शामक औषधि (Neo octinum Liquid, Knoll) Octin के १० प्र०श० सोल्यूशन के १० बून्द की मात्रा में ३-३ घन्टे पर देने से या Atropine Sulphate. $\frac{1}{200}$, $\frac{1}{100}$ ग्रेन मात्रा में त्वचा द्वारा देने से या Papaverin १½ ग्रे० मुख से देने से या Chlorpromazine (Thorazine) Largactil. ५० मिलि० मात्रा में मुख द्वारा दिन में तीन बार या ५० मिलिग्राम मात्रा में मांस द्वारा या शिरा द्वारा ५० ग्राम एक बार देने से आराम आ जाता है। Promazine Hydrochloride (Sparine, Wyeth) भी इसी प्रकार इतनी मात्रा में लाभदायक है।

आयुर्वेद में हिक्का :-

आयुर्वेदानुसार शरीर में उसके निर्बल हो जाने से या उसमें किसीरोग विष के रहने से वायु की वृद्धि या प्राण शक्ति की हीनता हो जाय और यह निर्बलता विशेषत: श्वास महापेशी (Diaphragm) में हो और ऐसी अवस्था में श्वास मार्ग व अन्न मार्ग में कफ का प्रकोप होकर उनके मार्ग में कुछ अवरोध हो जाय तो इस मांस पेशी में स्तम्भ होकर हिक्का उत्पन्न हो जाती है। अर्थात् प्रधानत: तो यह रोग शरीर तथा श्वास मार्ग में वायु की वृद्धि से होता है तथा गौण रूप में शरीर में विशेषत: श्वास तथा अन्न मार्ग में कफ की वृद्धि से होता है। वृद्धावस्था में या किसी तीव्र रोग में या शरीर में उत्पन्न विषों के कारण इस मांस पेशी में स्तम्भ होकर जो हिक्का होती है वह असाध्य कही गई है। दाय जनित हिक्का युवकों में होती है।

(च०।चि०।१७), (सु०।उ०।५०)

चिकित्सा :-

एक तोला मधु में या मध में थोड़ा लवण मिलाकर पिलाने या दशमूल क्वाथ में मधु मिला के पिलाने से तथा काली मरिच व हींग व राल का धूम नाक में देने से या सैन्धव मिश्रित घृत व जल का नस्य देने से हिक्का शान्त हो जाती है। निरन्तर रहने वाली हिक्का में मयूर पिच्छा भस्म, शंख भस्म, दो दो तोला पिप्पली तथा त्रिफला की औषधियां प्रत्येक एक एक तोला मिलाकर

weinGarten's Syndrome

उसकी एक माशे की मात्रा मधु के साथ दिन में तीन बार देते रहने से या ताम्र भस्म २ चावल मात्रा में मधु, काला नमक, निम्बू रस के साथ चटाने से या सूत शेखर रस (पारा, गन्धक, टंकण, वत्सनाभ, सुवर्ण भस्म, ताम्रभस्म, त्रिकटु, धातुर बीज, चतुर्जातिक, शंख भस्म, कचुर, बिल्व गिरि, समान समान को भृंगराज रस की अनेक भावना) के एक दो रत्ती की मात्रा में दिन में दो तीन बार देने से या ताम्र भस्म, सुवर्ण-भस्म, मुक्तापिष्ठी, समान समान को मिलाकर मधु के साथ एक रत्ती मात्रा में दो बार प्रतिदिन देने से बहुधा लाभ हो जाता है। दशमूला-दि घृत, जीवनीय घृत, पिलाने से हिक्का नाशक कहे गये हैं। क्षय रोग जनित हिक्का, स्वर्ण बसंत, मालती तथा पौष्टिक औषधि पान से ठीक हो जाती है। रोगी की प्राण शक्ति को बढ़ाने के लिये उसे सुपच पौष्टिक भोजन तथा मधु, लशुन, दूध, घृत, उष्णोदक, मूली, लवण, पक्षी मांस, तथा कोई निद्राजनक औषधि दी जाती है।

युवासुलभ जीर्ण कास :- Pulmonary Eosinophilia Eosinophilic-Lung:

यह रोग हमारे देश में सुलभ है परन्तु पहले पहल Weingarten ने १९४३ ई० में बम्बई में इसरोग की ओर हमारा ध्यान खिंचाया। उन्होंने इसका नाम Tropical Eosinophilia रक्खा तथा यह घोषित किया कि सैमल के प्रयोग से यह रोग अच्छा हो जाता है। उसके बाद नाना गर्म देशों में इस रोग के होने की सूचना मिली और अब इस रोग को Pulmonary Eosinophilia कहते हैं।

यह रोग अधिकत: २०-३० वर्ष की आयु के व्यक्तियों में खांसी के दौरों के रूप में होता है। बालकों में भी हो सकता है। ये खांसी की दौरे रात को या उसके पिछले भाग में विशेष-त: उठते हैं और बहुधा श्वास कृच्छ्रता से युक्त होते हैं। परन्तु श्वास रोग में श्वास को बाहिर फूंकने के समय जो कृच्छ्रता होती है वैसी इस रोग में नहीं होती इस रोग में शुष्क खांसी का दौरा रात को होता है। जिसमें बहुत खांसने के बाद चमकीला सा थोड़ा सा बलगम निकलता है। श्वास रोग के वेग में खांसी अन्त में होती है। इस रोग के वेग में खांसी प्रारम्भ से अन्त तक रहती है। खांसी के साथ कुछ एक में सीटियों की सी आवाज (Wheezing) भी सुनती है। बहि: श्वास लम्बा होता है। श्वास युक्त खांसी के अतिरिक्त सांध्यकालिक मृदु ज्वर ९९ या १०० डिग्री तक हो जाता है। अन्नारुचि और वमन के लक्षण भी होते हैं जिनके कारण शरीर में कृशता के लक्षण हो जाते हैं। रोगी को अशक्ति प्रतीत होती है। इस प्रकार यह खांसी का

रोग महीनों या वर्षों तक रहता है। कभी मन्द हो जाता, कभी प्रकट हो जाता है। इस रोग का भ्रम उर:क्षय से हो जाता है। परन्तु फुफ्फुस शिखर की परीक्षा करने पर उसमें ठोसपन (Consolidation) के लक्षण नहीं मिलते, ना ही X-Ray द्वारा परीक्षा करने पर उसमें कोई लक्षण पाया जाता है। इस रोग के X-Ray चित्र में Bronchial Markings. या Bronchial Straitions का लक्षण अर्थात् श्वास नालियों की छाया का लक्षण (सम्भवत: Peribronchial Fibrosis. के कारण) स्पष्ट होता है, पर उसमें क्षयरोग सूचक बदलियां छाई हुई नहीं पाई जाती हैं। क्षय रोग के समान इसमें हृदयगति या नाड़ी गति तीव्र नहीं होती है। उसके समान खांसी दिन रात न उठके रात को ही विशेष होती है। थूक में क्षय जीवाणु भी नहीं पाये जाते हैं। इस रोग में रक्त की परीक्षा करने पर श्वेत कणों की अति वृद्धि (Leucocytosis) का लक्षण पाया जाता है। (श्वास रोग में यह लक्षण नहीं पाया जाता) श्वेत कणों की वृद्धि Eosinophils की वृद्धि के कारण होती है। रक्त के प्रति क्युबिक मिलीमीटर में श्वेत कणों की संख्या १०, २०, ३० हजार या इससे भी अधिक होती है। जिनमें से चौथाई या आधी या इससे भी अधिक Eosinophils होते हैं। दूसरे श्वेत कण लगभग नार्मल संख्या में होते हैं तो भी Neutrophils की अपेक्षा Lymphocytes कुछ अधिक होते हैं। यदि प्रति क्युबिक मिलिमीटर रक्त में Eosinophils २००० से अधिक हों या २०,३०, ४० या इससे अधिक प्रतिशतक हों तो इसी रोग का सन्देह करना चाहिये इस रोग में रक्त कणों का Sedimentation Rate भी बढ़ा हुआ होता है। अर्थात् २०,३० या ४० मिलिमिटर Hg. प्रतिघन्टा होता है। फुफ्फुस की परीक्षा करने पर उसमें Broncho Pneumonia के से चिन्ह होते हैं। उसके निम्न भागों पर Rales सुनाई पड़ते हैं। वहि: श्वास लम्बा सुनाई पड़ता है। वायु कोष्ठकों में विद्यमान स्राव में ७० प्र० श० से अधिक Eosinophils होते हैं। वहां की रक्त वाहिनियां रक्त से भरी होती हैं। कुछ एक रोगियों की आंत में कृमि (Round या Hook Worms) भी पाये जाते हैं। इस रोग का कारण Microfilaria का रक्त में संक्रमण कर जाना है। इसे रोगी के फुफ्फुस, यकृत, लसीका ग्रन्थियों में देखा गया है। इस कृमि के Larvae के कारण ही फुफ्फुस में विकृति होकर यह रोग होता है। कई बार Microfilaraemia नेगेटिव होता है पर Filariasis के लक्षण तो बहुधा मिलते ही हैं।

चिकित्सा :-

सोमल-Arsenic के किसी योग जैसे N.A.B .१५- .३ ग्राम

P.S. इस रोग में Diethylecarbamazine के साथ Dexamethasone भी मिलाकर देने से रोग शीघ्र अच्छा हो जाता है

सप्ताह में १ बार शिरा द्वारा देने या Acetylarsan के पहले १ सी०सी० फिर २ और ३ सी०सी० के प्रति सप्ताह में एक बार मांस द्वारा देने से ६-७ इंजेक्शन में पूर्ण लाभ हो जाता है। Leucocytes की संख्या नार्मल हो जाती है, यद्यपि Eosinophils की प्रतिशतक संख्या कुछ अधिक रह जाती है। इस औषधि की प्रति सी०सी० में २० मिलिग्राम या ·०५ ग्राम के लगभग Arsenic होता है। कभी कभी प्रथम एक दो इंजेक्शन के बाद रोगी का कष्ट बढ़ जाता है पर बाद में लाभ प्रतीत होने लगता है। इसी प्रकार Leucarsone (M & B) की गोलियाँ के दिन में २ बार मुख द्वारा देने से भी लाभ प्रतीत होता है। अथवा Acetarsol या Carbarsone को ·२५ ग्राम या ३ ग्रेन की मात्रा में केपसूल के अन्दर बन्द करके दिन में दो बार, एक सप्ताह तक के समय के लिये दिया जाता है। औषधि छोड़ने पर कुछ काल बाद फिर भी यह रोग हो सकता है। परन्तु फिर Arsenic के प्रयोग से ठीक हो जाता है। तथापि इसका प्रयोग अब कम होता है। परन्तु इस रोग की एक और नवीन औषधि (१) Diethylecarbamazine Cit rate. (२) (Herogen B.D.H.) Citrazan Hetrazan Lederle) ... ... है। इसकी १०० मिलिग्राम की मात्रा को दिन में तीन बार ८-१० दिन तक भोजन बाद दिया जाता है। परन्तु लाभ तो पहिले दिन ही प्रतीत होता है। रक्त में Eosinophils की मात्रा भी नार्मल हो जाती है। Arsenic. से भूख के नष्ट हो जाने तथा Dermatitis होने तथा वृक्कों पर दुष्प्रभाव पड़ने का भय रहता है। पर यह औषधि निरुपद्रव है। इसी प्रकार Banocide (B.W.) की ~~जो Diethyl Carbamazine है इस की~~ दो गोलियाँ के दिन में तीन बार १० दिन तक देने से भी यह रोग अच्छा होता है। इसी प्रकार ~~Diethylcarbamazine या~~ Uni-carbarzan (Unichem) ४००-५०० मिलि० के मांस द्वारा १-१ सप्ताह बाद चार बार देने से यह रोग अच्छा हो जाता है। cortisone आदि औषधियों से भी इस रोग में विशेष लाभ होता है।

आयुर्वेद में भी इस प्रकार के श्वास रोग के लिये सोमल का प्रयोग होता है। अर्थात् मल्ल सिंदूर को एक रत्ती की मात्रा में या सोमल त्रिकटु चूर्ण को (६० में १) दो रत्ती की मात्रा में या श्वास कुठार को दो रत्ती की मात्रा में दिन में ३ बार घृत के साथ दिया जाता है।

कास रोग :- Bronchitis:

तीव्र कास रोग :- Acute Bronchitis:

श्वास मार्ग का कार्य :-

बाहर से आने वाली श्वास वायु के साथ धूल

के कण तथा जीवाणु भी श्वास मार्ग में प्रवेश करते हैं । परन्तु नासिका, गले आदि का मार्ग ऐसा तिरछा बना हुआ है तथा उसमें श्लेष्म स्राव इतना होता है कि ये सब ऊपर ही पकड़ लिये जाते हैं । और कण्ठ (Larynx) के नीचे के श्वास मार्ग में नहीं पहुंच पाते । गले (Pharynx) के ऊपर के भाग में चारों ओर इतना अधिक जो Lymphoid Tissue रहता है। वह भी द्वार पाल के समान बाहर से आये जीवाणुओं आदि को पकड़ कर नष्ट करने का कार्य करता है । तथापि यदि कोई जीवाणु या कण श्वास नालियों में प्रवेश करते हैं तो वहां की श्लेष्म कला की श्लेष्म ग्रन्थियों (Mucous Glands) से होने वाला श्लेष्म स्राव उनको पकड़ कर नष्ट कर देता है । श्लेष्म कला के अन्तस्तर (Epithelium) के Cilia वाले सेल ऊपर की ओर गति करते रहते हैं । उनकी इस गति के द्वारा जीवाणु तथा कण जो श्लेष्म स्राव के साथ मिश्रित होते हैं ऊपर गले की ओर धकेल दिये जाते हैं । इसी प्रकार श्वास नालियों में स्वभावत: एक उर्ध्व मुख गति थोड़ी थोड़ी देर के लिये उठती रहती है जिसे Bronchial Peristalsis कहते हैं । यह बाह्य पदार्थों को ऊपर गले की ओर फेंकती रहती हैं । श्वास नालियों के अन्त:स्तर (Epithelium) में रक्त वाहिनियों भी अधिक मात्रा में बिछी रहती हैं । जब बाहर से कोई विदाोभक जीवाणु वहां पहुंचता है तो इन रक्त वाहिनियों के द्वारा श्वेत कण (Leucocytes) भी वहां पर्याप्त मात्रा में पहुंच जाते हैं + और Phagocytosis के द्वारा उन्हें नष्ट कर देते हैं जो जीवाणु बचते हैं वे भी श्वास नालियों की दीवार में विद्यमान लसीका वाहिनियों (Lymphatics) के द्वारा पकड़ लिये जाते हैं । इस प्रकार जब तक श्वास नालियां स्वस्थ अवस्था में रहती हैं कोई जीवाणु वहां एक रोहण नहीं कर पाता ।

कारण :-

प्राय: जुकाम (Cold) के Virus या श्लेष्म ज्वर (Influenza) के Virus का संक्रमण होकर खांसी का रोग हुआ करता है अर्थात् श्वास नालियों में Viral Infection होकर यह रोग आरम्भ होता है । परन्तु बाद में नासिका गले आदि में विद्यमान जीवाणुओं, विशेषत Haemophilus Influenzae, Pneumococcus, Streptococci का और कभी कभी Neisseria Catarrhalis Staphylococcus आदि का संक्रमण हो जाता है । श्वास नालियों की साधारण जीवाणु प्रतिरोधक शक्ति के कम हो जाने पर ही Virus या उपर्युक्त जीवाणुओं का संक्रमण हो सकता है । इसीलिये आर्द्रता युक्त शीतकाल में सहसा शीत लग जाने से शिशुओं और वृद्ध व्यक्तियों में जिनमें स्वभावत: प्रतिरोधक

शक्ति कम होती है खांसी का रोग बहुत पाया जाता है। शिशुओं के अतिरिक्त बड़ी आयु के व्यक्तिओं में विशेषत: हृदय रोग से युक्त वृद्धों में थोड़ी सर्दी लगकर ही खांसी का रोग हो जाता है। अन्य रोगों के उपद्रव रुप में जैसे विषम विषम ज्वर, उर:क्षय में, वृक्कशोथ में, मन्थर ज्वर में भी श्वास नालियों में संक्रमण होकर खांसी का रोग हो जाता है।

विकृति :-

ऊपर ऊपर की बड़ी श्वास नालियों की श्लेष्म कला में जीवाणु या Virus का संक्रमण होने पर अतिमात्रा में रक्त संचित हो जाता है। श्लेष्म ग्रन्थियों (Mucous Glands) की प्रणालिकाओं (Ducts) के सूज जाने के कारण पहले उनसे होने वाल श्लेष्म स्राव बन्द हो जाता है जिससे श्वास नालियां शुष्क हो जाती हैं। इसे इस रोग की प्रथम अवस्था शुष्क अवस्था (Dry Stage) कहते हैं। फिर शीघ्र ही श्लेष्म ग्रन्थियों में से श्लेष्म स्राव या म्यूकस की मात्रा अत्यधिक हो जाती है क्योंकि ये सूजकर बड़ी बड़ी हो जाती हैं। पहले पतला श्लेष्म स्राव (Mucoid Exudation) होता है फिर वहां श्वेत कणों (Leucocytes) के अधिक मात्रा में संचित हो जाने से यह गाढ़ा (Mucopurulent) हो जाता है। इस श्लेष्म स्राव की अवस्था को (Mucoid Stage) कह सकते हैं। इस निकलने वाले स्राव स्रव में, श्वास नालियों के अन्तस्तर (Epithelium) के संक्रमण के कारण मरे हुये सैल, जीवाणु तथा श्वेत कण मिले हुये होते हैं। श्वास नालियों में जीवाणु संक्रमण होने पर Vagus के प्र संज्ञावाही सूत्रों (Afferent Fibres) के द्वारा, इसकी प्रतीति Medulla को होती है और वहां से इस संक्रमण के निराकरण के उद्देश्य से खांसी की प्रतिक्रिया (Cough Reflex) होती है अर्थात् जब श्लेष्म कला के रोंगटे (Cilia) अपना कार्य पूर्णतया नहीं कर पाते तो उनकी सहायता के लिये खांसी उत्पन्न होती है। साधारणत: खांसी तब उठती है जब श्वास मार्ग में अर्थात् गले, कंठ, कंठ नाली, श्वास नालियों या फुफ्फुसावरण में कहीं पर कोई विक्षोभक कारण हो। विक्षोभक कारण जीवाणु संक्रमण, अर्बुद Neoplasm कोई असात्म्य द्रव्य (Allergen) कोई बाह्य या आभ्यान्तर रासायनिक द्रव्य हो सकता है।

लक्षण :-

खांसी का रोग प्राय: जुकाम का ही एक भाग होता है । उसके Virus के रक्त में संचार कर जाने (Toxaemia) के कारण शरीर में भारीपन, जकड़न (Malaise) ९९ या १०० डिग्री तक का ज्वर, हृदय गति, नाड़ी गति, तथा श्वास गति की कुछ तीव्रता और श्वेत कणों की कुछ वृद्धि हो जाने के लक्षण हो जाते हैं । जुकाम के इन लक्षणों के प्रकट होने के थोड़े समय बाद अर्थात् दूसरे दिन खांसी उठने लगती है जो पहले एक दिन के लिये खुश्क और तंग करने वाली होती है । खांसने से गले तथा छाती के ऊपर के भाग में दुखन (Soreness जो श्वास नली शोथ-tracheitis- के कारण होता है की प्रतीति होती है) । श्रवण यंत्र द्वारा सुनने से श्वास प्रश्वास की आवाज कुछ कठोर सुनाई पड़ती है । वहि:श्वास कुछ लम्बा सुनता है । फिर एक दिन के बाद पहले पतली और चपकीली बलगम कठिनता से निकलती है जो शीघ्र ही मात्रा में अधिक अधिक होती जाती एवं गाढ़ी होती जाती, तथा सुगमता से निकलने लगती है । तब सुनने से Rales की ध्वनि सुनाई पड़ सकती है ।

इस प्रकार तीसरे दिन के लगभग जब बलगम निकलने लगती है तो इस रोग के प्रारम्भिक विष संचार (Toxaemia) के लक्षण जैसे जकड़न (Malaise) तापमान की वृद्धि आदि शांत हो जाते हैं फिर खांसी तथा बलगम के लक्षण भी ८-१० दिन तक ठीक हो जाते हैं । यदि किसी शिशु या वृद्ध व्यक्ति में ज्वर तीसरे, चौथे दिन भी बना रहे और खांसी, खुश्क ही रहे तो छोटी श्वास नालियों में शोथ के प्रसरण कर जाने अर्थात् Bronchiolitis की आशंका करनी चाहिये । इसी प्रकार यदि किसी युवक में खुश्क खांसी १५ दिन से अधिक चले तो उसमें उर:क्षय की आशंका करनी चाहिये । बालक में खुश्क खांसी रात को उठे तो Tonsils के कारण, दिन रात खुश्क खांसी उठे तो Mediastinal Glands में शोथ, बड़ी आयु में श्रम करने पर खांसी उठे, झागदार पतली बलगम गिरे तो हृदय रोग, पसली में दर्द के साथ खुश्क खांसी उठे तो Pleurisy, बालक में खांसी के साथ उलटी हो जाय तो काली खांसी का सन्देह करें ।

जीर्ण कास :-Chronic catarrhal, Bronchitis या Winter Cough:-

पुरानी खांसी का रोग प्राय: ४५ वर्ष से ऊपर की आयु के व्यक्तियों में जब उनकी श्वास नालियों की श्लेष्म कला की स्वाभाविक प्रतिरोधक शक्ति कम हो जाती है, होता है । शीतकाल

P.S. धूम्रपान

तथा बसन्त ऋतु में विशेषत: जब वायु आर्द्र होती है, शीत लग जाने से होता है। वाम हृदय के निर्बल हो जाने से या Mitral Valve के रुग्ण हो जाने से जब फुफ्फुसों में रक्त संचय अधिकाधिक होने लगता है तब श्वास नालियों की जीवाणु प्रतिरोधक शक्ति कम हो जाती है। इसी प्रकार शरीर की धमनियों के कठोर (Arteriosclerosis) हो जाने से जब श्वास नालियों की श्लेष्म कला का पोषण कम हो जाता है तब भी उनकी जीवाणु रोधक शक्ति घट जाती है अथवा जीर्ण प्रतिश्याय, Sinusitis, Tonsillitis, आदि ऊपर के श्वास मार्ग के रोगों के कारण Pneumococcus, Streptococcus Haemolyticus और Haemophilus Influenzae का संक्रमण श्वास नालियों में बार बार होता रहे तो भी खांसी बार बार हो जाती है। अथवा नीचे फुफुस में कोई पुराना रोग हो जैसे उर:क्षय, श्वास रोग, या उर:काठिन्य (Pulmonary Fibrosis) या उर:शैथिल्य (Emphysema का रोग रहता हो तो भी खांसी का रोग जीर्ण रूप में रहता है। अर्थात् जैसे ऊपर कहा गया है, गले (Pharynx) से लेकर Pluera तक के श्वास मार्ग में कहीं पर भी विक्षोभक कारण उपस्थित हो तो उससे Vagus तथा Glossopharyngeal नाड़ियों के संज्ञावाही (Afferent) सूत्रों द्वारा Medulla में विद्यमान कास केन्द्र (Cough Centre) उत्तेजित होता है और फिर चेष्टा वाही सूत्रों के द्वारा श्वास प्रश्वास की मांस पेशियों के उत्तेजित हो जाने से खांसी उठती है। श्वास मार्ग में पाये जाने वाले उपर्युक्त Pneunococcus तथा Streptococcus आदि जीवाणु इसके प्रधान कारण नहीं क्योंकि जब धूल, धूम्र तथा गैसों के कारण तथा रक्त के अन्दर विद्यमान असात्म्य Allergic द्रव्यों के द्वारा श्वास नालियां विक्षुब्ध होती हैं एवं उनमें स्राव तथा स्तम्भ (Bronchospasm) अधिक होता है तब इन जीवाणुओं को वहां बढ़ने का अवसर मिल जाता है, तथा इनके कारण स्राव और स्तम्भ और अधिक होते हैं।

विकृति :-

श्वास नालियों के अन्दर चिरस्थायी संक्रमण जनित विक्षोभ के रहने से श्लेष्म कला, श्लेष्म ग्रन्थियों (Mucous Glands Submucous Layer), तथा मांसमय स्तर (Muscular Layer) में अति वृद्धि हो जाती है। सूजी हुई श्लेष्म ग्रन्थियों में से श्लेष्म स्राव भी अधिक मात्रा में होता है। क्रमश: Submucous Layer में स्नायु तन्तु की वृद्धि होती जाती है जिससे श्वास नालियों की प्रत्यास्थता

या लचकीलापन कम हो जाता है अर्थात् चिररुग्ण श्वास नालियों के मांस में Elastic Tissue तो कम होता जाता है और स्नायुतंतु (Fibrous Tissue) बढ़ता जाता है । श्वास नालियों के लचकीलेपन के कारण ही श्रम करने पर सुगमता से अधिक हवा फेफड़ों तक पहुंच जाती है । इनके कुछ कठोर और कुछ शिथिल (Dilated) हो जाने पर फिर श्रम करने से शीघ्र श्वास काठिन्य के हो जाने या सांस चढ़ जाने का लक्षण होने लग जाता है । बार बार शोथ होते रहने से श्लेष्म कला के Cilia भी नष्ट हो जाते हैं । खांसी का रोग और भी पुराना हो जाय तो धीरे धीरे स्नायुभाव (Fibrosis) की यह प्रक्रिया बढ़ती जाती है अर्थात् श्वास नालियों की श्लेष्म कला, श्लेष्म ग्रन्थियों, अन्तःस्तर तथा मांसमय स्तर सब में लघुता (Atrophy) की प्रक्रिया होने लगती है और Submucous स्तर में स्नायुभाव बढ़ता जाता है । श्वास नालियों के शिथिल (Dilated) हो जाने से उनमें से कफ या बलगम पूरी तरह से नहीं निकल पाता जिससे वहां जीवाणु रोहण और सुगम हो जाता है ।

लक्षण :-

श्वास नालियों में थोड़ी सर्दी लग जाने पर भी वहां की रक्तवाहिनियों में संकोच होकर उनकी श्लेष्म कला में जीवाणु संक्रमण हो जाता है और खांसी का रोग हो जाता है, तथा खांसने और श्लेष्म स्राव होने के लक्षण हो जाते हैं । श्वास नालियों में अधिक मात्रा में संचित हुये जीवाणुओं, श्लेष्म स्राव, अन्तस्तर (Epithelium) के मृत हुये सैलों और श्वेत कणों (Leucocytes) को बाहर फेंकने के लिये ही खांसी उठती है । नालियों की श्लेष्म कला के सूजे हुये रहने, उनके मार्ग में श्लेष्म स्राव के भरे हुये रहने, तथा उनकी दीवार में न्यूनाधिक कठोरता के हो जाने से श्रम करने पर या ऊपर चढ़ने पर श्वास कृच्छ्रता का लक्षण हो जाता है तथा श्वास नालियों में शोथ या जीवाणु संक्रमण के चिरस्थायी रूप में रहने से रक्त में कुछ विष संचार भी होता रहता है । रक्त को आक्सिजन भी कुछ कम मिलती है जिससे रोगी की कार्य करने की शक्ति मन्द हो जाती है । श्वास नालियों में चिरस्थायी शोथ के रहने से तथा उनके मार्ग के तंग हो जाने पर, वायु कोष्ठकों (Air Vesicles) की दीवारों पर दबाव बढ़ जाता है और वायु कोष्ठकों में वायु अधिक रुक जाती है जिसे ऊर्ध्वश्वास-फुफुस वृद्धि-या उरः शैथिल्य (Emphysema) कहते हैं । फुफुसों में हवा के अधिक मात्रा

में रुकने से भी श्रम करने पर श्वास चढ़ जाने का उपर्युक्त लक्षण होने लगता है । इस उपद्रव के होने पर रोगी की अपनी छाती को फुला सकने (Expansion) की शक्ति कम होती है अर्थात् अन्दर हवा के भरे रहने से पुफुस की Vital Capacity आधी रह जाती है । इसीलिए जीर्ण कास रोग में छाती अधिक फूली हुई दीखती है जबकि उर:क्षय रोग में सदा छाती दबी हुई होती है । जीर्ण कास रोग सर्दी की ऋतु में बढ़ता है । गर्मी में ठीक रहता है जबकि उर:क्षय से होने वाला कास रोग गर्मी की ऋतु में अधिक बढ़ता है।जीर्ण कास रोग में श्वास प्रश्वास के साथ छाती कम हिलती दीखती है । टकोर की आवाज ऊंची होती है । श्वास ध्वनियां मन्द सुनती, बहि:श्वास लम्बा सुनता Rhonchi. सुनाई पड़ती, पुफुस तल पर Rales भी सुनाई पड़ती, Pulmonary प्रदेश पर दूसरा शब्द ऊंचा सुनाई पड़ता है ।

पुफुस में केन्सर रोग से इसका सन्देह हो सकता है जिसमें पुफुस मूल (Hilum) के समीप की श्वास नालियों की श्लेष्म कला के Basal सैलों की तह में अतिवृद्धि होती है जिसके कारण श्वास नालियां अवरुद्ध सी हो जाती हैं । परिणामत: पुफुस का वह भाग शिथिल (Atelectatic) हो जाता है । समीपस्थ पुफुसावरण पर भी यह रोग फैलता है जिससे पुफुसावरण कोष में जल Effusion उत्पन्न हो जाता है । इस वृद्धि के कारण खांसी रहती, बलगम पड़ती है जिसमें कभी कभी रक्त भी आ सकता है , दर्द भी हो सकती है, श्रम से श्वास चढ़ जाता है । यदि रोगी अति धूम्रपाई हो, पुफुसावरण जल में रक्त का मिश्रण हो तो केन्सर का सन्देह करना चाहिये । उपद्रव - श्वास रोग, ऊर्ध्वश्वास (Emphysema) तथा दक्षिण हृदय शैथिल्य इसके उपद्रव होते हैं ।

तीव्र कास या Acute Bronchitis की चिकित्सा :-

तीव्र कास का रोग जुकाम के समान Virus के विष संचार से होता है । इसके लिये रोगी को एक गर्म कमरे में जिसका तापमान ६५ डिग्री फारनहाईट के लगभग रहता हो गर्म कपड़ा लेकर एक दो दिन के लिये लेट जाना चाहिये । पूर्ण विश्राम से ज्वर, हड़ फूटन (Malaise) आदि विष संचार के लक्षण शान्त हो जाते हैं । Codeine $\frac{1}{4}$, $\frac{1}{2}$ ग्रे० या Syr.Codeine तथा Syr.Tolu १-१ चम्मच मिला के दो तीन बार देवें या Aspirin, Phenacetin ४-४ ग्रेन Codeine $\frac{1}{8}$ ग्रेन की एक मात्रा दे सकते हैं । गले और छाती की दुखन को दूर करने के लिये १०० डिग्री से कुछ कम गर्म किये १ पाइंट जल में १ ड्राम Tr.Benzoin Co अथवा Eucalyptus Oil. की

कुछ बुन्द या Menthol के एक दो दाने डालकर उसकी वाष्प कमरे में देनी चाहिये। इस औषधि युक्त गर्म वाष्प से श्वास नालियों की विदाभ शीलता शुष्कता और दुखन दूर होती है। छाती पर गर्म बोतल रखने या Liniment Terebenth या Liniment Camphorae, मलने से भी खांसी को आराम आता है। Alkaline Diaphoretic Mixture. जैसे Potassium Citrate १५ ग्रेन, Liquor Ammonium Acetate १ ड्रांम, Tincture Camphor Co. १५ बुन्द, Syrup-Tolu. १ ड्राम, जल १ औंस मिला कर ऐसी तीन मात्रा या Pot: Acet १५ ग्रेन, Tinct: Ipecae: १० बुन्द, Vin, antim. ५ बुन्द, १ औंस जल में मिलाकर तीन मात्रा दिन में देवें। खांसी तथा ज्वर अधिक हो तो कोई Tetracycline २५० मिलि० प्रति ४-६ घंटे पर (जैसे Achromycin Beplex के साथ) ३-४ दिन दें या Procaine Penicillin ४ लाख Units मांस द्वारा दो तीन दिन प्रतिदिन दें या Sulpha Mezathine. या Sulphaphenazole (Orisul) १।२ - १ ग्राम दैनिक का दो तीन दिन प्रयोग करना चाहिये या Penicillin के साथ .५ ग्राम Streptomycin भी मिला के दें या Erythromycin १०० मिलि० ६-६ घन्टे पर दें या Penicillin V. १२५-२५० मिलि० प्रति ४ घन्टे पर मुख से दें, रोग आरम्भ होने के तीन चार दिन बाद जब बलगम गिरने लगती है १० ग्रेन Soda Bicarb: को दिन में दो तीन बार एक एक गिलास गर्म जल के साथ पिलाने या Ammonium Carbonate ५ ग्रेन, Potassium Iodide. २-३ ग्रेन, Potassium Bi-Carbonat १५ ग्रेन, Spirit Chloroform ५ बुन्द, जल १ औंस मिलाकर ऐसी तीन मात्रा दिन में गर्म जल के अनुपान के साथ देने से बलगम भलीप्रकार गिरने लगती है। साथ ही रोगी को प्रतिदिन प्रात: कोई मृदु विरेचन जैसे १-२ ड्राम Mag: Sulph: दे देना चाहिये। रात निद्रा के लिये Phinobarbitone $\frac{1}{2}$ ग्रे० दें, भोजन के लिये हलकी गर्म चाय, गर्म जल में किसी फल के रस तथा ग्लूकोज को मिला कर या किसी सब्जी का यूष दे सकते हैं। भोजन द्रव होना चाहिये तथा दिन में २$\frac{1}{2}$,३ सेर हलका गर्म जल पिला देना चाहिये।

जीर्ण कास रोग की चिकित्सा :- Chronic Bronchitis:

प्रथम तो जीर्ण प्रतिश्याय, Sinusitis, Tonsillitis, हृदय नैर्बल्य या धूल, धूम आदि जिन कारणों से चिरस्थायी कास रोग होता है उनसे दूर रहने का उपाय करना चाहिये। दूसरा श्वास नालियों की जीवाणु प्रतिरोधक शक्ति को बढ़ाने के लिये यदि तो रोगी

निर्बल हो तो उसे घृत, दूध, Cod Liver Oil, Vitamin A.D. तथा केल्सियम तथा Vitamin B. आदि पर्याप्त मात्रा में देने चाहिये । यदि रोगी शरीर में भारी हो तो उसके भोजन की मात्रा कम करनी चाहिये । उसे प्रधानत: फलों, सब्जियों पर ही रहना चाहिये । खुली हवा में मृदु व्यायाम करने, प्राणायाम करने से भी स्वास्थ अच्छा होता है । क्योंकि अन्त:श्वास के सक्रिय कर्म होने से हवा अन्दर आ तो जाती है पर नालियों के तंग हो जाने से वह निकलती नहीं । बहि:श्वास बल से लेना चाहिये । श्वास नालियों में संचित हुये श्लेष्म द्रव को निकालने के लिये निम्बू या किसी फल रस से मिश्रित गर्म गर्म जल को ग्लूकोज डालकर दिन में दो बार पिलाना चाहिये । अथवा ३ ग्रेन लवण और ५ ग्रेन सोडा बाईकार्ब और Spirit Chloroform ५ बुन्द, Aqua anisi १ औंस के गर्म गर्म जल के एक औंस में प्रात: तथा सांय काल पीते रहने से भी बलगम सुगमता के साथ निकलती रहती है । Pot.Bi-Carb. १० ग्रेन लवण ५ ग्रेन, Ammon.Bi-Carb; ५ ग्रेन, Spirit Ammon: २० बुन्द, जल १ औंस को एक गर्म गर्म जल के प्याले में मिलाकर दिन में दो तीन बा दे सकते हैं । अथवा Ammon.Carb: ५ ग्रेन, Tr.Nux: ८ बुन्द, जल १ औंस तीन बार दे सकते हैं । इससे बलगम सुगमता से निकल जाती है । निकलने वाली बलगम में कुछ दुर्गन्ध हो तो Eucalyptus Oil, Menthol. आदि से युक्त गर्म वाष्प का सेवन कुछ देर के लिये प्रतिदिन करना चाहिये । श्वास नालियों के स्तम्भ के लिये Ephedrine ½ ग्रेन, Oxymel Scillae. तथा Syrup Tolu. ३०-३० बुन्द मिला के ३-४ बार देना चाहिये । श्वास नालियों में विद्यमान जीवाणुओं के नष्ट करने के लिये Crystalline Penicillin. १० लाख यूनिट के दिन में २ बार लेने से या Penicillin. और इसके साथ Streptomycin १ ग्राम के मिश्रित इंजेक्शन (Ambistryn) के दिन में एक- दो बार मांस द्वारा लेते रहने से या Penicillin V. के मुख द्वारा ३१२ मिलि० मात्रा में २ बार दिन में लेने से या Achromycin (Tetracycline Hyd.) २५० मिलि० केपसूल के दिन में चार पांच बार केवल पांच दिन तक लेने से लाभ होता है या इसके बाद फिर इसकी मात्रा कम कर सकते हैं । इसके साथ Beplex केपसूल भी दिन में तीन बार दें । रात खांसी के कष्ट को कम करने के लिये Syr.Codeine Phos. ४५ बुन्द, एक्वा क्लोरोफार्म १ ड्राम में मिला के दे सकते हैं । हृदय नैर्बल्य से खांसी हो तो Tr.Digit. ५ बूंद Tr.Nux. ५ बुन्द, Ammon Carb: ५ ग्रे०, Spt.Chloro. तथा जल में दे सकते हैं । या Chlorothiazide ३-४ गोली प्रतिदिन दें ।

आयुर्वेद में कास रोग :-

आयुर्वेद में कहा है कि श्वास नालियों में विद्यमान वह प्राणवायु जो बाहिर की हवा को अन्दर लाने का कार्य करता है, इन नालियों के सूज जाने से जब प्रतिहत होकर स्वतंत्र या कफ के साथ ऊर्ध्व गति करने लगता या उदान भाव को प्राप्त करता है तब उसके द्वारा कण्ठ में जो टूटे हुये कांसी के बरतन के समान शब्द उत्पन्न होता है, उसे कास या खांसी (कासृ शब्दे) कहते हैं ।

(च०।चि०।१८।श्लो०६-८।सु०उ०।
।५२श्लो०३)

श्लैष्मिक कास :- (Catarrhal Bronchitis)

देहाग्नि को मन्द करने वाले शीत, स्निग्ध, गुरु आहार तथा अव्यायाम आदि शरीर में आम दोष या कफ दोष को बढ़ा देने वाले, कारणों से जब श्वास नालियों का कफ धातु दूषित हो जाता है, एवं बाहिर से आये जीवाणु या विष द्रव्य या धूल आदि का भलीप्रकार निराकरण नहीं कर पाता तब वह जीवाणु या विष द्रव्य वहां बढ़ने लगता है । फिर उसके निराकरण के लिये वहां कफ धातु का जो कफ शोथ (Catarrh) के रूप में प्रकोप होता है, उसे कफ कास कहते हैं । इसमें खांसी के साथ पतले या गाढ़े कफ स्राव होने तथा शरीर में आम दोष की वृद्धि के सूचक लक्षण होते हैं ।

(च०।चि०।१८।।श्लो०१७, सु०।उ०। ५२ श्लो० ८).

वातिक कास :- (Chronic Bronchitis)

श्वास नालियों की सहज प्राण शक्ति की हीनता के कारण (वायु में रूक्षता सरलता चलता आदि भीणता के होने से) प्रधानतया जो खांसी होती है उसे वातिक कास कहा जाता है । बड़ी आयु के व्यक्तियों में स्वभावत: वायु की वृद्धि होती है। श्वास नालियों में यह वायु वृद्धि या अक्षमता विशेष हो तो शीत आदि स्वल्प वायुवर्धक कारण से यह और बढ़ जातीहै । ऐसी अवस्था में उनमें ऊपर से जीवाणु संक्रमण सुगमता से हो जाता है । वातिक कास एक चिरस्थायी रोग है जो शीत से बढ़ता है जिसमें खांसी खुश्क होती या बहुत खांसने से थोडी बलगम निकलती है तथा शरीर में निर्बलता विशेष रहती है । श्वास नालियों में चिरस्थायी शोथ के अतिरिक्त स्तम्भ के कारण होने वाली श्वास युक्त खांसी (Spasmodic Bronchitis) को भी वातिक कास कहा जाता है ।

पैत्तिक कास :- (Purulent Bronchitis)

देहाग्नि को तीव्र कर देने वाले पित्त वर्धक कारणों, से जब देह में पित्त दोष बढ़ जाता है तो श्वास नालियों की पित्त धातु में ऊपर से आये जीवाणुओं व विदाहक द्रव्यों को पचाकर नष्ट कर देने की प्रक्रिया मन्द हो जाती है + जिससे जीवाणु वहां रोहण करने लगता तथा विदाहक द्रव्य प्रबल विदाहक हो जाता है। फिर उनके विपरीत वहां जो पित्त प्रकोप या पाकात्मक शोथ होता है (अर्थात् Purulent Bronchitis की प्रक्रिया होती है) उसे पित्त कास कहते हैं। इस रोग में बलगम के पूय मिश्रित होने से उसमें दुर्गन्ध भी हो सकती है तथा शरीर में ज्वर, पाण्डुता आदि पित्त वृद्धि के लक्षण होते हैं। Bronchiectasis की प्रारम्भिक अवस्था में बहुधा ऐसा होता है।

(च०।चि०।१८।।, सु०।उ०।५२)

कास रोग चिकित्सा :-

कफ प्रधान कास में रोगी को स्वल्प लंघन के बाद बलमये लघ्वाहार पर अर्थात् कुलथी, मुंग, जौ को मुली, सौंठ, पिप्पल, अनार दाने तथा गर्म मसालों के साथ पका कर बनाये स्वल्प स्नेह वाले यूष पर रखना चाहिये। तथा आम दोष के पाचन के लिये उसे आर्द्रक रस और मधु देवें अथवा उसे त्रिकटु, पंचकोल, चूर्ण, व्योषादि चूर्ण, तालीशादि चूर्ण, लवंगादि चूर्ण, उपर्युक्त तुलसी पत्रादि की चाय, लघुपंचमूल या दशमूल क्वाथ आदि किसी का मधु के साथ सेवन करायें। जब बलगम निकलने लग जाय उसके निकालने के लिये यवक्षार, अपामार्ग क्षार, शृंग भस्म, टंकण खील, नवसादर आदि किसी का दो दो रत्ती की मात्रा में प्रयोग कर सकते है। कफकास के लिये चन्द्रामृत रस (त्रिकटु, त्रिफला, चव्य, धनिया, जीरा, सैन्धव, रस, गन्धक, लोहा, अभ्रक एक एक भाग, टंकण ८ भाग, वासा स्वरस की तीन भावना) तीन तीन रत्ती की मात्रा में दिन में तीन बार देने से लाभदायक होता है। बालकों को सितोपलादि, लवंगादि १ माशा मात्रा में मधु से या टंकण की खील १ रत्ती, मधु से या बालचातुर्भद्र (कर्कट शृंगी, पिप्पली, अतीस, मुस्ता) चूर्ण १ रत्ती की मात्रा में मधु से दिन में कई बार दें।

वातिक कास :-

वात प्रधान कास में रोगी को दूध, मांस रस, गेहूं, आदि बल्य आहार पर रखना चाहिये। औषधियों में से लघुपंचमूल क्वाथ, पिप्पली चूर्ण के साथ कास्त्य, हरीतकी, च्यवन प्राश, द्राक्षारिष्ट

दशमूलारिष्ट, लक्ष्मीविलास रस, वासा हरीतकी अवलेह, वासाखण्ड, दशमूलादिघृत, दारिषट्पल घृत (च०गुल्म) किसी का भी प्रयोग अधिक हितकर होता है। वासा मधुयष्टी पानक (वासा एक पाव, मुलहटी, कंटकारी आधा आधा पाव, आर्द्रक रस एक छटांक, चीनी ३ पाव) नई पुरानी दोनों प्रकार की खांसी के लिये बड़ा उपयोगी होता है। बलगम को निकालने के लिये यवक्षार ५ रत्ती एक प्याले गर्म जल में मिला कर दिन में तीन बार पिलाना चाहिये। श्वास नालियों में स्तम्भ या श्वास के साथ कास हो तो लवंगादि चूर्ण का या पुष्कर मूल, कर्पूर, आदि श्वास ~~ब~~ शामक औषधियों का जैसे पुष्करमूल, कट्फल, भारंगी, सोंठ, पिप्पली समान समान का क्वाथ, या कर्पूरादि चूर्ण, (कपूर, बालक, कबाब चीनी, जायफल, लवंग १-१, नागकेसर २, मरिच ३, पिप्पली ४, शुंठी ५ भाग, खाण्ड सर्व तुल्य) आदि दें। या दशमूलादि घृत (च०) दें।

पित्त प्रधान कास में वासा द्राक्षा, अभया क्वाथ में मिश्री मधु मिलाकर बनाया अवलेह, वासा, खण्ड, कूष्मांड, सितोपलादि तथा मधुयष्ठी चूर्ण, लाभदायक होते हैं। गले में विक्षोभ होने के कारण खुश्क खांसी तंग करती हो तो लवंगादि वटी, (लौंग, मरिच बहेड़े की बक्कल, समान समान, कत्था, सर्व तुल्य, बबूल, त्वक्कषाय से भावना) या खदिरादिवटी, (पुष्कर मूल, कर्कट शृंगी, कट्फल, मुलहटी हरड़, लवंग, त्रिकटु, बहेड़ा समान समान, कत्था सर्व तुल्य, अनार के छिलके, बबूल त्वक् कषाय, से ७ भावना) दिन में कई बार चूसनी चाहिये। क्षीरिघृत (क्षीरी वृक्षों के अंकुर, क्वाथ तथा द्राक्षा कल्क और दूध के साथ बनाये घृत) के सेवन से भी पित्तकास शान्त होता है। तथापि पित्त प्रधान या infection प्रधान खांसी के लिये antibiotics का देना भी आवश्यक प्रतीत होता है।

जीर्णपूय कास - श्वास नाली शैथिल्य - Bronchiectasis (Ectasis= Dilatation).

कारण तथा सम्प्राप्ति :-

एक या अनेक श्वास नालियों के शिथिल हो जाने या फैल कर चौड़े हो जाने के रोग को श्वास नाली शैथिल्य कहते हैं। यह रोग बाल्यकाल में ~~हुए~~ हुए खसरे (Measles) व काली खांसी (Whooping Cough) के बाद उपद्रव रूप में कास जनित फुफ्फुसज्वर (Br.Pneumonia) के हो जाने ~~ब~~ और फिर उसके जीर्ण रूप में रह जाने से आरम्भ होता है तथा ३०-४० वर्ष की आयु में प्रकट होता है। इस आयु तक इसके जीर्ण रूप में रहने से प्रायः फुफ्फुस के निम्नभाग

में स्नायुभाव (Fibrosis) हो जाता है। अर्थात् वहां के वायु कोष्ठक पिचक जाते व कुछ ठोस से हो जाते हैं। (Collapsed या Atelectotic हो जाते हैं) और उनमें वायु का प्रवेश कम हो जाता है। स्पष्ट है कि जब वहां का फुफुस संकुचित हो जाता है तो उसमें विद्यमान वायु प्रणालियों पर बाहिर की तरफ खींच पड़ जाती है जिससे उनका स्रोत कुछ चौड़ा हो जाता है और देखने में तकुए के आकार का होता है। हर बार अंत:श्वास लेने पर उनका यह चौड़ापन और अधिक बढ़ जाता है। ऐसे रोगी में खांसी का रोग भी चिरस्थायी रुप में रहता है जिससे श्वास नालियों में श्लेष्म स्राव बढ़ जाता है। इन चौड़ी हुई २ श्वासनालियों में स्राव अधिक मात्रा में भरने लगता है जिससे बाद में वहां पूय जीवाणुओं का संक्रमण हो जाता है अर्थात बलगम में कुछ पूय का मिश्रण हो जाता है और उसके कारण इन श्वास नालियों की दीवारों पर दुष्प्रभाव पड़ने लगता है। एक तो इस द्रव के दबाव से जो दिवारों पर पड़ता है वे निर्बल हो जाती हैं, दूसरा इन जीवाणुओं से उत्पन्न Trypsin सदृश पाचक रसों के द्वारा दिवारों की श्लेष्म कला पर दुष्प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार जीवाणु संक्रमण के कारण नालियों की श्लेष्म कला के अन्तस्तर पर विद्यमान प्रेरक सूत्र (Cilia) नष्ट हो जाते हैं जिससे वहां द्रव का संचय और बढ़ता है। फिर क्रमश: दिवारों के मांस व लचकीले अवयव (Elastic Tissue) में भी स्नायुमय क्षीणता आ जाती है जिससे ये नालियां और अधिक शिथिल व चौड़ी हो जाती हैं। इन दीवारों के अन्दर विद्यमान धमनियों में भी शोथ (Endarteritis) हो जाता है अर्थात् रक्त-वह-स्रोतोरोध होकर इन दीवारों का पोषण भी घट जाता है। इस प्रकार इन नालियों की दीवारों की मल क्षेपक शक्ति एवं उनकी जीवाणु रोधक शक्ति दोनों क्षीण हो जाती हैं। मल के अधिकाधिक रुकने से वहां जीवाणु संक्रमण और अधिक सुगमता से होने लगता है। इस प्रकार श्वास नालियों का चिरस्थायी जीवाणु संक्रमण (Infection) इस रोग का प्रधान कारण है।

शुष्क उर:क्षय (Fibroid Phthisis) के होने पर भी श्वास नालियों पर बाहर से खींच पड़ कर वे चौड़ी हो जाती हैं एवं उनमें से पूय सदृश बलगम समय समय पर बड़ी मात्रा में निकलता है पर उस अवस्था में उर:क्षय रोग के सूचक लक्षण इतने स्पष्ट होते हैं कि उनमें श्वास प्रणाली शैथिल्य रोग के सूचक लक्षण छिप से जाते हैं।

श्वास प्रणाली शैथिल्य की यह विकृति बढ़ती जाय अर्थात् श्वासनालियों की निर्बलता एवं क्षीणता बढ़ती जाय तो उनमें

विद्यमान Pulmonary Artery की प्रशाखाओं में अवरोध भी उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है, जिसके परिणाम रूप में दांये हृदय में रक्त अधिकाधिक रुक जाता है और वह कुछ शिथिल (Dilated) हो जाता है। Tricuspid Valve में भी कुछ कुछ रक्त वापिस दक्षिण ग्राहक कोष्ठक में लौटने लगता है और शरीर की शिराओं में रक्त अधिक रुकने लगता है।

लक्षण :-

श्वास प्रणाली शैथिल्य का रोग धीरे धीरे अज्ञात रूप में आरम्भ होता है। बहुत वर्षों तक खांसी के सिवाय और कोई विशेष लक्षण प्रकट नहीं होता। बाद में किसी एक विशेष करवट पर लेटने से जब शिथिल हुई श्वास नालियों में संचित बलगम भार के कारण अपने स्थान से हिलकर श्वास नालियों के ऊपर के स्वस्थ भाग में स्पर्श करता है तो खांसी से (Cough Reflex से) थोड़ी देर में बहुत सी बलगम अर्थात् आधी छटांक से ५-६ छटांक तक मुख द्वारा बाहर आ जाती है एवं दिन में एक बार प्रतिदिन ही बलगम की बड़ी मात्रा में गिरने की यह प्रक्रिया बहुत काल तक जारी रहती है। बर्तन में पड़े रहने पर यह तीन स्तरों में विभक्त हो जाती है। ऊपर पतला झागदार पानी (Mucus) होता है बीच में धुंधला सा अपारदर्शक द्रव होता है और नीचे भूरे से रंग का गाढ़ा द्रव होता है जिसमें Strepto-Staphylococci प्रधान रूप से होते हैं। इसमें Anaerobe जीवाणुओं की संख्या भी बढ़ जाय तो इसमें दुर्गन्ध भी आ जाती है। पुफुसगत पूय के कारण श्वास में भी दुर्गन्ध हो सकती है। फैली हुई श्वास नालियों की झिल्ली में विद्यमान अंकुरों (Papillae) में रक्त के अधिक होने से उनके क्षत हो जाने पर कभी कभी बलगम में पूय के साथ स्वल्प सा रक्त भी आ जाता है पर उर:क्षय रोग के समान अधिक मात्रा में रक्त इस रोग में नहीं आता।

इस प्रकार पूय कास के या पूय युक्त बलगम के दिन में १-२ बार खांसी द्वारा बाहर आते रहने पर भी कोई अन्य विशेष दुर्लक्षण स्पष्ट रूप से नहीं होता। हां शरीर में पूयभाव (Sepris या Infection) के न्यूनाधिक रहने के कारण शरीरव्यापी कुछ लक्षण जैसे श्रम शक्ति की न्यूनता, हलकी पाण्डुता, भार की कमी या कृशता, अन्नारुचि, हृदय गति की तीव्रता के लक्षण रहते हैं। जब बलगम भली प्रकार निकलता रहता है तापमान नहीं रहता, जब कुछ रुक जाता है तब कुछ कुछ तापमान हो जाता है।

कालान्तर में इस बलगम के देर तक बड़ी मात्रा में रुक जाने से कुछ कुछ काल बाद ज्वर के वेग होने लगते हैं जिनमें सर्दी लगकर ज्वर चढ़ जाता है। स्वेद भी आता है और विषम ज्वर (Malaria) होने का सन्देह होता है। ऐसे ज्वर वेग शीघ्र शीघ्र और तीव्र रूप में होने लगें तो समझना चाहिये कि रोग ने कुछ उग्र रूप ले लिया है। फिर भी यदि इस रोग की चिकित्सा होती रहे तो रोगी इस रोग के रहने पर भी चिरकाल तक सुखी रह सकता है। पर यदि नियम पूर्वक अन्दर संचित हुई बलगम को बाहर न निकाला जाय औषधियों के द्वारा उसमें जीवाणु संक्रमण को भली प्रकार न रोका जाय तो पुफुस ज्वर (Septic Bronchopenumonia) हो जाने या दक्षिण हृदय के ऊपर भार पड़ के उसके फ़ैल हो जाने का भय रहता है। ये इस रोग के उपद्रव हैं जिनसे रोगी को बचाना चाहिये। यह रोग असाध्य है एक बार बढ़कर अच्छा नहीं होता। जीवाणुनाशक औषधियों की सहायता से शान्त रहता है।

इस रोग की आशंका उर:क्षय से हो सकती है। परन्तु वह रोग पुफुस के शिखर में होता है। उसमें स्नायुभाव (Fibrosis) दोनों ओर होता है तथा उसकी थूक में क्षय जीवाणु व Elastic Tissue मिलते हैं + इससे सन्देह दूर हो जाता है। उरो विद्रधि का रोग एक तीव्र रोग है, उरोरोगी अधिक रोगी होता है। इस रोग के समान चिरस्थायी नहीं होता। इस रोग के उपद्रव के रूप में उरोविद्रधि का रोग हो सकता है। (चिरस्थायी) कारण दोनों पुफुस ग्रस्त होते हैं उसके थूक में ... नहीं होता और ... मोटी नहीं होती।

रोग परीक्षा :-

यह रोग प्राय: करके किसी एक पुफुस के एक खण्ड में और उसके भी एक उपखण्ड (Segment) में होता है। दांये पुफुस के मध्य खण्ड के निम्न भाग में यह रोग होता है या उससे भी ज्यादा यह बाम पुफुस के ऊपर के खण्ड के निम्न भाग (Lower-Segment Lingula) में जो दक्षिण पुफुस के मध्यमखण्ड का ही उधार प्रतिनिधि है, होता है।

इस प्रकार किसी ओर के पुफुस के निम्न भाग के संकुचित हो जाने से उधार की छाती की दीवार कुछ दबी हुई तथा श्वास प्रश्वास के साथ कुछ कम हिलती दीखती है। वहां पर के पुफुस के कुछ ठोस होने तथा श्वास नालियों के बलगम से भरे होने से टकोर की आवाज भी मन्द होती है। स्पर्शन द्वारा वहां होने वाली वाचिक कम्पन (Vocal Fremitus) कम प्रतीत होती है। वहां के ठोस पने के कारण वहां श्वास प्रणालियों पर सुनाई पड़ने वाली आवाज (Broncho-phony).

तथा मुंह में बोला हुआ शब्द (Pectoriloquy) भी ऊंचा व अधिक स्पष्ट सुनाई पड़ता है। इन फैली हुई श्वास नालियों व श्वास कोष्ठकों में विद्यमान बलगम में वायु गुजरती हो तो बुल-बुलों के फटने (Consonating Rales) की आवाज भी सुनती है। इनके साथ साथ सूजी हुई श्वास नालियों में श्लेष्म स्राव के होने से Rhonchi भी सुनाई पड़ सकती हैं।

रक्त में आक्सिजन की न्यूनता हो जाने से अंगुलियों के सिरे मोटे हुए २ दीखते हैं (Clubbing).

रोगविनिश्चय में Bronchography बहुत सहायक होती है। यदि वह ५० वर्ष की आयु से बड़ा न हो तो तथा एक सप्ताह तक प्रति दिन लेट कर २-३ बार अन्दर से बलगम पूरी तरह से निकाल दी गई हो तो जिस फुफुस में रोग का सन्देह हो उसमें ही Cricothyroid Membrane में से Trachea में १०-१५ सी॰सी॰ Lipiodol या Neohydriol या Dionosil (Iodine युक्त अविदाहक तैल) को एक मुड़ी हुई सुई के द्वारा डाल दिया जाता है जो उधर की Bronchi-Bronchioles में फैल जाता है। इसके देने से पहले इन प्रदेशों को संज्ञा हीन कर लिया जाता है। इसके तुरन्त बाद Radiography की जाती है।

चिकित्सा :- अवरोधक चिकित्सा :-

क्योंकि यह रोग Broncho pneumonia के उपद्रव रूप में होता है अत: जब किसी बालक को यह रोग हो तो उसकी चिकित्सा में लापरवाही न होनी चाहिये। ४-६ लाख युनिट Procaine Penicillin के तब तक प्रतिदिन देने चाहियें जब तक तापमान और खांसी सर्वथा दूर न हो जायं। इसके बाद भी उसे प्राणायाम की क्रिया दिन में ३ बार कुछ दिन तक करानी चाहिये ताकि फुफुस फैल कर फिर अपनी नार्मल अवस्था में आ जायें।

निवारक चिकित्सा :-

शय्या कफप्रवाहरण (Postural Drainage) चारपाई पर एक करवट पर लेटकर दोनों हाथों को नीचे फर्श पर रखे तकिये पर टिका के सिर को नीचा करके, रोगग्रस्त फुफुस के निम्न खण्ड को मुख की अपेक्षा ऊँचा करके, अन्दर संचित हुई बलगम को नीचे रखे बर्तन में निकाल देना चाहिये। १५-२० मिनट तक ऐसी स्थिति में रहने से प्राय: सारी बलगम निकल जाती है तथा प्रात:काल उठने पर या रात को बिस्तरे पर लेटते समय दोनों वक्त इस क्रिया को

करके बलगम को नित्य प्रति साफ करते रहना चाहिये। क्षारीय मिश्रण की एक मात्रा लेकर ऊपर गर्म जल का एक कप पीलेने से यह बलगम पतली होकर आसानी के साथ निकल जाती है। अथवा चारपाई के पांयते को १/२,१ फुट ऊंचा करके लेटने से भी अन्दर संचित बलगम बाहर निकलने लग जाती है। जब जब भी ज्वर का वेग हो या जीवाणु संक्रमण के लक्षण हों ७ दिन Crystalline Penicillin.G. १० लाख यूनिट मात्रा में १२-१२ घन्टे बाद दिन में २ बार या Procaine Penicillin ६ लाख यूनिट दिन में १ बार मांस द्वारा दे देना चाहिये। ज्वर वेग न भी हो तब भी १-१/२ दो मास के अंतर से यदि एक सप्ताह तक उपर्युक्त विधि से इस औषधि को ले लिया जाय तो रोग दबा रहता है। इस औषधि से बलगम पूय मय न रह के जल मय या अधिक पतला हो जाता है। इस औषधि का प्रभाव ठीक ठीक न हो तो Streptomycin १-२ ग्राम मात्रा में दिन में २ बार करके सात दिन तक दे देना चाहिये। इतने दिन देने से गाढ़ी बलगम पतली हो जाती है। या Tetracycline (Achromycin) ५०० मिलि० ८-८ घन्टे बाद मुख से दें या Erythromycin (Ilotycin) .५ ग्राम गोलियाँ ६-६ घन्टे बाद दें।

Aerosoltheraphy: ५० हजार युनिट पेनिसिलिन को प्रति सी०सी० नार्मल सेलाइन में मिलाके उसे एक अच्छी छिड़कने वाली मशीन (Nebuliser Devilbiss) के द्वारा Tracheobronchial नालियों में तीन तीन घन्टे पर छिड़कने से भी लाभ होता है। Streptomycin २५० मिलि० प्रति सी०सी० नार्मल सेलाइन में मिला के भी छिड़क सकते हैं। Terramycin ५०-१०० मिलि० को ७५% Propyline Glycal में मिला के छिड़क सकते हैं। इसी प्रकार Tr.Benzoin Co.(१ पाइंट में १ ड्राम) का वाष्प श्वास नालियों में देने से भी बलगम पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। थूक की दुर्गन्धि को दूर करने के लिये Creosote मिश्रण Pot. Iod. .५ ग्रे०, Creosote. २ बुन्द, Ext.Glycyrrhiz.Liq. २० बुन्द, Syrup Tolu. ३० बुन्द, Aq.Anisidest. १/२ औंस दिन में तीन बार जल में मिलाकेलेना चाहिये।

इस चिकित्सा के साथ साथ नासिका, गले आदि में शोथ का प्रतिकार भी करते रहना चाहिये। शुष्क तथा गर्म ऋतु में और इसी प्रकार के देश में रहने तथा धुंएं और धूल से बचने से क्योंकि जीवाणु संक्रमण तथा विदाह कम होता है, रोग बढ़ने नहीं पाता।

जब जब रोग थोड़ा भी बढ़े, लेट जाना चाहिये। तथा चारपाई के पांयते को १/२,१ फुट ऊंचा रखना चाहिये। अच्छी खुराक

P.S. इंग्लैण्ड में १९५१ में सिगरेट न पीने वालों में १००० के
पीछे .06 प्रतिशत की मृत्यु इस रोग से हुई। इसके विपरीत
जो लोग १-१४ सिगरेट रोज पीते थे उनमें १००० के
पीछे .५७ प्र.श. मृत्यु हुई जो दिन में १५-२५
सिगरेट पीते थे उनमें १.३९ प्र.श. मृत्यु हुई। और
जो लोग २५ सिगरेट नित्य पीते थे उनमें १००० के पीछे
2.26 प्र.श. मृत्यु हुई। इससे स्पष्ट है कि सिगरेट
का सम्बन्ध उक्त रोग के साथ घनिष्ठ है।
Atmospheric pollution का इस रोग के
साथ निकट सम्बन्ध अभी तक कोई विशेष
माना नहीं जाता (Medical Annual 1965)

तथा शुद्ध हवा से शरीर के पोषण को बढाना चाहिये ।

इससे रोग शान्त न हो तो Segmental Resection. या Lobar Resection का शल्य कर्म कराना चाहिये ।

पुफुस श्लेष्मार्बुद :- Primary Carcinoma of the Lung Bronchial Carcinoma.

कारण :-

गत २५-३० वर्षों से पुफुस में कैन्सर अधिक देखने में आ रहा है । ज्यों ज्यों कल कारखाने बढ़ रहे हैं यह रोग बढ़ रहा है । १९५६ में इंग्लिस्तान में लगभग २० हजार मृत्यु इस रोग से हुईं । यहां तक कहा जाता है कि बड़ी आयु के प्रारम्भिक भाग में यदि खांसी और सांस चढ़ने के लक्षण होने लगें और हृदय रोग, वृक्करोग आदि न हों तो पुफुस में कैन्सर का ही सन्देह करना चाहिये । यह वृद्धि क्यों हुई है तथा इस रोग का कारण क्या है, इस विषय में अभी तक कोई निश्चित मत नहीं है । इतना तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि बड़े शहरों में जहां गाड़ियों, डीजल आयल, व कारखानों आदि का धुआं अधिक होता है, जो लोग सिगरेट, तमाखू आदि अधिक मात्रा में पीते हैं, उनमें ४५ से ५५ वर्ष की आयु के बीच में, यह रोग होता है । इन धुओं में कोई कैन्सर जनक Hydrocarbon इस रोग का कारण प्रतीत होता है । क्योंकि पुफुस में श्वास नाली के अन्दर से यह अर्बुद आरम्भ होता है, जिससे प्रतीत होता है कि इसका प्रधान कारण बाहर से आता है । कैम्ब्रिज के डा० Lasnitoski ने गर्भस्थ शिशु के पुफुस के Explant को लेबोरेटरी में पाल कर सिगरेट के धुंए के Carcinogen से उसमें तीन सप्ताह में कैन्सर या Epithelial Growth उत्पन्न करके दिखाई भी है ।

सम्प्राप्ति :-

पुफुस मूल (Hilum) के समीप किसी बड़ी या मध्यम आकार की श्वास नाली की श्लेष्म कला के गहरे (Basement-Membrane के) सेलों में अतिवृद्धि की प्रक्रिया के हो जाने से यह अर्बुद बनता है । अधिकतर: इस अर्बुद के सेल प्राथमिक या अविकसित किस्म (Undifferentiated) के होते हैं । इसलिये इसे Anaplastic किस्म का कैन्सर कहते हैं । इसके सेलों के अण्डाकृति या गोल होने से इसे Oat Cell, Round Cell किस्म का अर्बुद भी कहते हैं । विकसित किस्म (Differeniated) का कैन्सर या Columnar celled कैन्सर भी होता है ।

P.S. Superior Vena Cava दब जाय तो शिराएं ग्रीवा में स्पष्ट हो जाता है।

रोग ग्रस्त पुफुस की परीक्षा करने पर यह एक भूरा श्वेत सा कठोर अर्बुद होता है जो एक श्वास नाली में से प्रारम्भ हो कर पुफुस में जाता है। श्वास नाली के भीतर इसके उभरे हुए स्तम्भ (Papillae) भी देखे जा सकते हैं। श्वास नाली की दीवार कठोर, श्वेत वर्ण होती तथा अन्दर की श्लेष्म कला खुरदरी होती है। इसके कारण से श्वास नाली का स्रोत तंग हो जाता है। जैसे और केन्सर होते हैं यह भी प्रसरण शील होता है। एक तो श्वास नाली के भीतर भीतर यह पुफुस कोष्ठकों (Alveoli) में प्रसरण करके उनमें नई श्लेष्म कला बना देता है। दूसरा आसपास की (Perivascular-Peribronchial) लसीका वाहिनियों के द्वारा यह पुफुस में प्रसरण करता है। पुफुस में से प्रसरण करके यह पुफुसावरण के बाहर के खोल (Parietal Pleura) में Diaphragm के ऊपर चढ़े Pleura में हृदय पर चढ़े आवरण (Pericardium) में भी फैल सकता है। जिससे पुफुसावरण कोष्ठ में जल उत्पन्न हो जाता है। इसी प्रकार इसके समीप विद्यमान जो लसीका ग्रन्थियां होती हैं जैसे कण्ठ नाली (Trachea) और उससे निकलने वाली श्वास नालियां (Bronchi) के बीच में पड़ी ग्रन्थियों में प्रसरण करता है। वहां एक ढेर सा बन जाने के बाद फिर वहां से इसके सैल कक्षा ग्रन्थियों अथवा हंसली की हड्डी के ऊपर विद्यमान (Supraclavicular) ग्रन्थियों तथा ग्रीवा की ग्रन्थियों में फैलकर उन्हें फुला देते हैं। Mediastinum में इस ढेर के हो जाने से वहां Nerves, शिरायें, कण्ठ नाली, (Trachea) भोजन नाली आदि पर दबाव पड़ जाता है। पुफुस से बाहर यकृत, Adrenal ग्रन्थियों, मस्तिष्क, नेत्र, सुषुम्ना काण्ड तथा अस्थियों में भी यह रोग लसीका वाहिनियों के द्वारा प्रसरण कर सकता है।

लक्षण :-

श्वास नाली में उत्पन्न अर्बुद के विक्षोभक होने से सबसे पहले इस रोग में खांसी का लक्षण होता है जो पहले खुश्क होती है। बाद में इसके श्वास मार्ग में कुछ दूर फैल जाने पर कफ का स्राव भी अधिक होने लगता है जिससे झागदार या गाढ़ी बलगम भी गिरने लगती है। यदि अर्बुद से युक्त श्वास नाली में क्षत भी हो जाय तो थूक में मिला हुआ रक्त भी आ जाता है। Bronchoscopy से इस अर्बुद को देखा जा सकता है। तथा निकलने वाली थूक में Tumour सैलों का पता Dudgeon की विधि से लगाया जा सकता है। इस अर्बुद के कारण रोग ग्रस्त श्वास नाली का स्रोत कुछ कुछ तंग हो जाय

तो श्वास प्रश्वास में सीटी की सी आवाज (Wheezing) भी होने लगती है । तत्सम्बन्धित पुफुस में हवा के अधिक मात्रा में भरे रहने से अर्थात् Emphysema के होने के कारण श्वास चढ़ जाता है ।

इस अर्बुद के कारण श्वास नाली का स्रोत बन्द हो जाय तो उस नाली, से सम्बन्धित पुफुस हवा के न जा सकने से संकुचित (Collapsed) हो जाता है जिससे उस पुफुस खण्ड (Lobe) से सम्बन्धित छाती अन्दर दब सी जाती है । वायु के वहां न जा सकने से वहां पर छाती कम हिलती दीखती है । तथा श्वास प्रश्वास ध्वनि कम सुनाई पड़ती है । संकुचित हुए पुफुस खण्ड में श्वासनालियां शिथिल होकर फैल जाती हैं (अर्थात् वहां Bronchiectasis हो जाता है) उनमें पूय भाव हो जाता है तथा उनसे सम्बन्धित संकुचित हुए पुफुस खण्ड में विद्रधि (Abscess) भी हो सकती है । इसीलिये इस रोग में पूय कास का लक्षण हो सकता है ।

पुफुस में अर्बुद होने पर पुफुसावरण (Pleura) में भी इसके सेलों का संक्रमण हो जाता है वहां इसका प्रभाव होने से छाती पर कहीं दर्द हो सकता है । दर्द के बाद पुफुसावरण कोष (Cavity) में जल (Effusion) भी उत्पन्न हो सकता है । इस जल में रक्त का मिश्रण होता है तथा उसमें इस अर्बुद के सेल भी पाये जा सकते हैं । Diaphragm पर चढ़े पुफुसावरण में इस रोग का प्रभाव हो तो दर्द पेट में प्रतीत होता है । कभी कभी यह अर्बुद श्वास नाली के सिरे पर पुफुस के प्रान्त भाग में Pleura के निकट होता है । ऐसी अवस्था में Pleura में जल उत्पन्न होने या छाती की दीवार पर इसके दुष्-प्रभाव होने का लक्षण अधिक स्पष्ट होता है । इस प्रकार यदि ४५-५० वर्ष की आयु के व्यक्ति में पहले पहल खांसी, बलगम, श्वास कृच्छ्रता, छाती पर दर्द के लक्षण हों साथ ही कृशता या भार की न्यूनता, अन्ना-रुचि, मन्द ज्वर के लक्षण हों तो इस रोग का सन्देह करना चाहिये ।

किसी पुफुस के शिखर (Apex) के समीप यह अर्बुद उत्पन्न हो Apical Carcinoma हो तो कन्धों में दर्द का लक्षण होता है तथा प्रथम पृष्ठ सम्बन्धी सौषुम्न नाड़ी (प्रथम Thoracic root), के ग्रस्त हो जाने से ऊर्ध्व बाहु तथा अग्रबाहु दोनों के आभ्यन्तर भाग में भी दर्द होता है तथा हाथ की छोटी मांस पेशियों में कृशता और निर्बलता हो जाती है । (Ulnar तथा Median) नाड़ियों के ग्रस्त होने से) बांये पुफुस के शिखर में अर्बुद हो तो Recurrent Laryngeal-Nerve के ग्रस्त होने से स्वर भंग का लक्षण हो सकता है ।

पुफुसों के बीच के प्रदेश (Mediaslimum) में ऊपर की ग्रन्थियाँ के फूल जाने से जब एक ढेर बन जाता है तब उसके द्वारा Superior Venacava के दब जाने से ग्रीवा तथा चेहरे पर श्वयथु या भारीपन आ जाता है। इसके द्वारा Trachea दब जाय तो श्वास कृच्छ्रता, और भोजन नाली पर दुष्प्रभाव पड़ जाय तो निगरण काठिन्य (Dysphagia) का लक्षण हो जाता है। Vagus & Sympathetic नाड़ियाँ के दब जाने से नाड़ी गति मन्द या तीव्र हो जाती है। Frenic नाड़ी के दब जाने से हिक्का हो सकती है। Inter-Costal नाड़ियाँ के दब जाने से छाती या ऊर्ध्व बाहु पर दर्द हो सकता है।

रोग विनिश्चय :-

जैसा कि ऊपर कहा गया है Bronchoscopy तथा थूक की Dudgeon की विधि से परीक्षा करने पर इस रोग का निश्चय हो सकता है। X-Ray के द्वारा पुफुस मूल में सम्बन्धित पुफुस में कोई संकोच या निश्चेष्टता अर्थात् Emphysema या Atelectasis का चिन्ह मिले तो इस रोग का सन्देह होना चाहिये। इसी प्रकार यदि किसी ४५ वर्ष से ऊपर के व्यक्ति को लगातार ३-४ सप्ताह तक खांसी रहे या ऐसा व्यक्ति यदि २० वर्षों से एक पैकेट से अधिक सिगरट दिन में पीता रहा हो, दिन भर खांसी खुश्क सी रहती हो तो भी इस रोग का सन्देह करना चाहिये। यह रोग एक बार होकर बढ़ता ही जाता है। तथा लक्षणों के प्रकट होने के १-१½ वर्ष के अन्दर अन्दर घातक हो जाता है। Lobectomy या Pneumonectomy के शल्य कर्म के सिवाय किसी दूसरी चिकित्सा से लाभ नहीं होता। Alkylating औषधियों से कुछ लाभ होता है ऐसा कहा जा रहा है, इस प्रकार शिरा द्वारा Mustine के देने से लाभ हो सकता है।

आयुर्वेदानुसार चिरस्थायी पूय कास (Chronic Suppurative Bronchitis) रोग में पुफुस के एक भाग में रुक्षता, खरता, लघुता, आदि स्नायुभाव के लक्षण उसमें वायु की वृद्धि या उसकी प्राण शक्ति की हीनता के द्योतक होते हैं साथ ही कुछ एक श्वास नालियों में चिरस्थायी कफ शोथ या व्रण भाव या पूय भाव उनमें कफ व पित्तवृद्धि के सूचक होते हैं अर्थात् इस रोग में पुफुस के अन्दर वायु वृद्धि विशेष तथा गौण रूप में पित्त वृद्धि अथवा कफ वृद्धि भी होती है। अत: इस रोग की चिकित्सा के लिये रोगी की प्राण शक्ति को बढ़ाने का उपचार विशेषत: करना चाहिये। परन्तु वह ऐसा न हो जिससे कफ की वृद्धि होती हो। साथ ही पित्त और कफ के शामक उपाय भी करने चाहियें।

औषधियों में से वासा घृत (वासा स्वरस ४, घृत १, वासा पुष्प, मुलहठी, चन्दन, श्वेत, नीलोफर मिलित $\frac{1}{4}$ भाग) वासा खण्ड, कूष्माण्ड, वासावलेह, वासाहरितकी अवलेह, में से किसी एक को किसी कपूर युक्त औषधि जैसे कपूर, पोदीने का सत्व, अजवायन का सत, सत लोवान, आदि मिलाकर बनाये द्रव की १ बुन्द के साथ या अहिफेन २ भाग, कपूर १ भाग मिलाकर बनाई आधी रत्ती की गोली के साथ दिन में २ बार दे सकते हैं।

पुफुस ज्वर :- (Pneumococcal Pneumonia) Acute Lobar Pneumonia :-

कारण :-

यह रोग पुफुस में Pneumococci के संक्रमण से होता है। इसका पता Pasteur (१८८१) ने तथा Fraenkel (१८८४) ने पहले पहल लगाया। शहरों के खुली हवा से रहित बन्द घरों में रहने वाले ऐसे व्यक्तियों के, कि जिनकी प्रतिरोधक शक्ति अपनी अवस्था के कारण या किसी चिररोग के कारण गिर गई है, फफेडों में शीत लगकर जो शोथ हो जाता है उसे पुफुसज्वर (Pneumonia) कहते हैं। सहसा शीत लगने से श्वासमार्गों की प्रतिरोधक शक्ति गिर जाती है।

किसी पुफुस ज्वर से ग्रस्त रोगी की थूक में विद्यमान Capsule वाले Pneumococci के पुफुस के वायु कोष्ठकों में संक्रमण कर जाने से यह रोग होता है। जिन capsule के कारण phagocytes का प्रभाव नहीं होता जो कि गले आदि स्थानों से परन्तु सीधा रोगी से नहीं होकर किसी स्वस्थ रोग जीवाणु वाहक रोगी (Carrier) के द्वारा सहसा संक्रमण ऊर्ध्व श्वास मार्ग में हुआ करता है। स्वभावत: गले में विद्यमान (Pneumococci के जो कि Non-Capsulated एवं निरुपद्रव होते हैं संक्रमण से यह रोग नहीं होता। पुफुस ज्वर से मुक्त हुए व्यक्ति, ३ मास तक इस जीवाणु के वाहक हो सकते हैं। पुफुस ज्वर रोगी के सम्पर्क में रहने वाले व्यक्ति भी २३ दिन तक इस कैपसुल वाले रोग जनक Pneumococcus के वाहक हो सकते हैं तथा जिस कमरे में पुफुस ज्वर का रोगी रहा हो उसकी धूल में भी यह जीवाणु बहुधा पाया जाता है। इनमें से किसी कारण से भी वायु द्वारा आया हुआ जीवाणु नाक में या गले में पकड़ा जाता है एवं पुफुस के वायु कोष्ठकों तक पहुंच ही नहीं सकता। परन्तु सर्दी की ऋतु में या बसन्त ऋतु के प्रारम्भ में जब जुकाम या श्लैष्म ज्वर (Influenza) के Virus के संक्रमण से नासा पश्चिम देश (Nasopharynx) की प्रतिरोधक शक्ति घटी होती है तब यह जीवाणु संक्रमण कर जाये तो नासिका के पिछले और गले के ऊर्ध्व भाग में वृद्धि करने लगता है। इसका परिपाक काल (Incubation काल)

१-२ दिन का ही होता है । फिर वहां का लसदार श्लेष्म द्रव अन्त: श्वास के द्वारा खिंचा हुआ जब कण्ठ तथा कण्ठ नाली में से होता हुआ पुफुस के वायु कोष्ठकों में पहुंचता है तब यह रोग आरम्भ होता है ।

साधारणत: पुफुस के वायु कोष्ठक शुष्क होते हैं । इसलिये वहां पहुंचे हुये Pneumococcus को वृद्धि करने के लिये अनुकूल भूमि नहीं मिलती । पर यदि वाम हृदय की निर्बलता के कारण पुफुस के वायु कोष्ठकों में श्वयथु (Oedema) हुआ हो या जीर्ण कास, श्वास आदि के कारण उनमें श्लेष्म द्रव का संचय हो या किसी कारण उनमें श्लेष्म द्रव पहले उत्पन्न हो गया हो तो Pneumococcus को वहां वृद्धि करने का अवसर मिल जाता है । अर्थात् वायु कोष्ठकों के बीच बीच की दीवारों में से (Pores of Cohn) यह दूसरे कोष्ठकों में प्रसरण कर जाता है । वृद्धावस्था में जब हृदय नैर्बल्य या वृक्क रोग (Nephritis) का रोग होता है Pneumonia अधिक होता है । गले के ऊर्ध्व भाग में से यह जीवाणु श्वास नालियों में से होता हुआ बहुधा दांये पुफस के निम्न खण्ड (Base) में विद्यमान वायु कोष्ठकों में संक्रमण करता है । इस जीवाणु के विदाभ तथा श्वयथु जनक होने के कारण उनकी सूक्ष्म सिराओं (Capillaries) में अति रक्त संचय (Hyperaemia) होकर इनके अन्दर शोथ जनित श्लेष्म द्रव (Inflammatory Fluid) भर जाता है इस श्लेष्म द्रव के द्वारा वहां पर Fibrinogen, रक्त कण, तथा Polymorphonuclear Leucocytes अत्यधिक मात्रा में पहुंचते हैं । इनसे युक्त श्लेष्म द्रव के वायु कोष्ठकों में भरे जाने से पुफुस का एक खण्ड (Lobe) ठोस (Consolidated) हो जाता है तथा उनमें वायु नहीं रहता । पुफुस के यकृत के समान ठोस हो जाने से इस प्रक्रिया को Red Hepatisation कहा जाता है । इस अवस्था में श्वास नालियों के स्राव में भी रक्त मिश्रित हुआ होता है और संचित हुये श्लेष्म द्रव में विद्यमान रक्त कणों के कारण यह खण्ड रक्त वर्ण होता है । इसमें विद्यमान Fibrinogen एक या दो दिन के अन्दर अन्दर Fibrin में परिवर्तित होकर जीवाणुओं के फैलने से रोक देता है तथा इस द्रव में विद्यमान श्वेतकण इन जीवाणुओं को नष्ट करने का कार्य करने लगते हैं । वे जीवाणुओं को Fibrin के जाल या वायु कोष्ठक की दीवार के पृष्ठ पर चिपका कर या दबाकर उन्हें हजम कर लेते हैं । इसे Surface Phagocytosis की प्रक्रिया कह सकते हैं । इससे पहले कि इन Pneumococci के विरोधी Opsonizing Immune Bodies (antibodies) उत्पन्न होकर इन्हें नष्ट करें, श्वेतकण (Leucocytes) अपने Phagocytosis के द्वारा उन्हें नष्ट करना

आरम्भ कर देते हैं। यदि रोगी को Antibiotic मिल जाय तो उससे भी जीवाणु नष्ट हो जाते हैं और जो बच जाते हैं, वे Phagocytosis से नष्ट हो जाते हैं। यदि Antibiotic न मिले तो Phagocytosis और उसके प्रारम्भ होने के तीन चार दिन बाद उत्पन्न होने वाले Immune Bodies इन दोनों के द्वारा वे
ये Immune bodies इस Phagocytosis की प्रक्रिया को तीव्र कर देते हैं
नष्ट कर ही दिये जाते हैं। इस अवस्था को जब वायु कोष्ठकों में श्वेत कण भर जाते हैं और Pneumococci मर जाते हैं, Grey Hepatization
यदि वहां infection बना रहे तो इन श्वेत कणों के अतिसंचय से वहां पूय भाव suppuration भी हो सकता है
कहते हैं। जब वायु कोष्ठकों में आये हुये जीवाणु श्वेत कणों के द्वारा नष्ट कर दिये जाते हैं तब इन मरे हुये श्वेत कणों तथा वायु कोष्ठकों में बचे हुये मलवे को साफ करने के लिये वहां पर Macrophages आ जाते हैं जो इन्हें Phagocytosis की प्रक्रिया के द्वारा अपने में पचा लेते हैं। ये Macrophages या तो रक्त के Monocytes अर्थात् Largemononuclear Leucocytes होते हैं या वायु कोष्ठकों की दीवार में विद्यमान सैलों से ही परिणत होकर बनते हैं। सम्भव है कि वहां संचित हुआ Fibrin तथा मरे हुये ये श्वेत कण अपने में से निकले Cytolitic Ferment के द्वारा भी पच जाते हैं (autolysis)। इस प्रकार वायु कोष्ठकों में संचित हुआ मलवा द्रवीभूत (Liquefied) हो जाता है। कुछ तो थूक के द्वारा, कुछ लसीका वाहिनियों द्वारा जज़्ब हो जाता है। इस प्रकार सूज कर ठोस हुआ पुफुस खण्ड फिर शीघ्र ही पूर्ववत् साफ सछिद्र, तथा स्वस्थ हो जाता है। प्राय: कर इस रोग ग्रस्त पुफुस खण्ड में न तो स्नायुभाव होता (Scar Tissue बनता है) ना ही वहां पर पूय भाव (Suppuration) होता है। वायु कोष्ठकों में संचित हुआ श्लेष्म द्रव भी पूर्णतया विलीन हो जाता है। अर्थात् वहां पर संचित हुए Fibrin में स्नायुभाव (Fibrosis) की प्रक्रिया नहीं होती / पूय भाव भी वहां नहीं होता। इस प्रकार आश्चर्यकारी रूप से रुग्ण पुफुस खण्ड के पुन: स्वस्थ हो जाने की इस प्रक्रिया को Resolution कहते हैं। इस रोग में रोग ग्रस्त पुफुस खण्ड के Pleura पर भी पुफुस ज्वर जीवाणु या तो लसीका वाहिनियों द्वारा या Sub-Pleural Alveoli के द्वारा सीधे पहुंच जाते हैं और उसमें शोथ या Pneumococcal Fibrinous Pleurisy के रोग को उत्पन्न कर देते हैं। पुफुस ज्वर का यह रोग तीव्र रूप में हो, प्रतिरोधक शक्ति हीन हो, तो ये जीवाणु रक्त में भी संचार कर जाते हैं अर्थात् Bacteraemia भी हो जाता है। सम्भवत: लसीका वाहिनियों के द्वारा पुफुस में से रक्त में यह संक्रमण होता है।

लक्षण :-

पुफ्फुस में जीवाणु प्रवेश होने पर उसके विपरीत जब प्रतिक्रिया होती है जैसा कि प्राय: रात को होता है तब सहसा सर्दी लगकर ज्वर चढ़ जाता है और उसी रीति १०३ या १०४ डिग्री तक पहुंच जाता है + तथा इसी प्रकार ऊंचा बना रहता है । ज्वर के साथ सर्वाङ्ग शैथिल्य (Prostration) का लक्षण भी बहुत अधिक होता है । रोगी शीघ्र शीघ्र उथले श्वास ले रहा होता है अर्थात् उसे कुछ श्वास कृच्छ्रता का लक्षण होता है (मिनट में 30-40 बालक में 40-60)। श्वास प्रश्वास की कठिनता के कारण उसके नथुने हिल रहे होते हैं । ये सब लक्षण विष संचार (Pneumococcal Toxaemia) के कारण होते हैं । सम्भवत: श्वासकाठिन्य Hering Breuer Reflex के कारण होता है । रोग के प्रारंभ से ही रोगी को अपने एक पार्श्व में चुभने वाला (Stabbing) दर्द होता है जो श्वास लेने तथा खांसने पर विशेष होता है । यह दर्द Pleura में Pneumococci के पहुँच जाने तथा उनके कारण शोथ के उत्पन्न हो जाने से होता है। रोगी इस शोथ युक्त Pleura के भार लेटता है क्योंकि ऐसा करने से उसे दर्द में कमी लगती है । उसे छोटी छोटी, सूखी खांसी भी होती रहती है पर क्योंकि खांसने से छाती में दर्द होता है , इसलिये वह खांसी को कुछ दबा के खांसता है । यह खांसी श्वास नालियों के शुष्क एवं विक्षुब्ध रहने से उत्पन्न होती है । एक दो दिन बाद फिर गुलाबी से रंग का झागदार बलगम निकलने लगता है । जिसमें रक्तकण, Epithelium के सैल तथा Pneumococci होते हैं । वायु कोष्ठकों (Alveoli) की सिराओं (Capillaries) में से निकले रक्त कणों के कारण यह बलगम गुलाबी रंग का होता है (stage of engorgement)। ज्यों ज्यों इस बलगम की मात्रा बढ़ती है (stage of red and grey hepatization), छाती का दर्द कम हो जाता है । इस रोग में निकलने वाला बलगम बड़ा चपकीला होता है । इस चपकीले पन का कारण इन जीवाणुओं के Capsule में से अत्यधिक मात्रा में निकलने वाला एक Polysaccharide पदार्थ है जिससे श्वयथु भारी मात्रा में होता है एवं Fibrin बहुत बनता है जो बलगम को चपकीला करता है । रोगी निर्बल नाड़ी मण्डल का हो तो वह न्यूनाधिक प्रलाप भी करने लगता है । यदि Antibiotic या Sulpha Drugs का प्रयोग न किया जाय और रोग साध्य हो तो ज्वर सातवें दिन के लगभग सहसा Crisis से उतर जाता है । अर्थात् कुछ घन्टों के अन्दर अन्दर ही स्वेद+मूत्र तथा मल प्रवृत्ति के साथ साथ बढ़ा हुआ तापमान उतर जाता है । वायु बड़ी हो, रोगी को मधुमेह, वृक्क रोग, हृद्रोग, रक्तभार

आदि कोई रोग हो, तापमान अधिक हो, या नाड़ी तीव्र हो, प्रलाप हो, उन्निद्रता हो, मूर्छा सी हो तो हृदय नैर्बल्य होकर मृत्यु हो जाती है।

परीक्षा :-

इस रोग में रोगी की परीक्षा करने पर, उसके शरीर मे शिथिलता (Prostration) तथा चेहरे पर चिन्ता दीखती है। उसकी नाड़ी गति ११० या १२० प्रति मिनट होती तथा दीर्घ (Bounding) होती और कम दबाव की होती तथा श्वास गति ३०-४० प्रति मिनट के लगभग होती है तथा इन दोनों का अनुपात परस्पर ३ और १ होता है। श्वास की तीव्रता फुफुस के एक खण्ड के ठोस हो जाने के कारण तथा विष संचार (Toxaemia) के कारण होती है, जिव्हा मैली, श्वेत तथा खुश्क होती है। त्वचा खुश्क और गर्म होती है। रोगी पीठ के भार या ग्रस्त पार्श्व पर लेटा होता है। वायु कोष्ठकों में चिपचिपे द्रव के उत्पन्न हो जाने पर श्रवण यन्त्र द्वारा सुनने से अन्त:श्वास के अन्त में बालों के रगड़ने की आवाज Fine Rales या Crepitations सुनाई पड़ती हैं। फुफुस के ठोस हो जाने पर श्वास प्रश्वास की आवाज Tubular या Bronchial हो जाती है तथा Bronchophony और Pectoriloquy चिन्ह स्पष्ट होते हैं। टकोर मन्द होती है। रोग ग्रस्त फुफुस प्रश्वास के साथ कम फैलता है। वाचिक कम्पन (Vocal Fremitus) बढ़ा हुआ होता है, रोग के अच्छा (Resolution) होने पर श्रवण करें तो नालियों में पतले स्राव के कारण बुल बुलों के फटने की सी आवाज (Coarse Crepitations) अन्त: तथा बहि: दोनों स्वासों के साथ सुनाई पड़ती है। मुत्र मात्रा में कम होता, उसमें Chlorides की मात्रा कम हो जाती है। रक्त की परीक्षा करने पर श्वेत कणों की १५ से ३० हजार तक वृद्धि पाई जाती है। रक्त भार घटा हुआ होता है। Broncho Pneumonia शिशुओं व वृद्धों में होता है। वह खांसी के उपद्रव के रुप में होता, सर्दी (Rigor) से आरम्भ नहीं होता, उसमें बलगम पतला होता, तथा रक्तवर्ण, चपकीला नहीं होता, उसमें तापमान न्यूनाधिक होता रहता है। उससे इस रोग का भेद सुगम है।

उपद्रव :-

पार्श्व शूल (Dry Pleurisy) तो इस रोग का एक लक्षण ही है। परन्तु कभी कभी द्रव युक्त पार्श्वशूल (Pleurisy with effusion) का उपद्रव भी हो जाता है। तथापि वह द्रव का संचय इतना अधिक नहीं होता कि उससे श्वास प्रश्वास में कठिनता होने लगे। प्राय: यह द्रव जीवाणु रहित होने के कारण उपद्रवकारी नहीं होता

यदि इसमें Pneumococci का संक्रमण हो जाय तो इसमें पुय भाव होकर पुय युक्त पार्श्व शुल (Empyema) का उपद्रव हो जाता है। यदि ७ दिन के बाद भी निरन्तर ज्वर (Remittent Continuous Fever) जारी रहे, प्रति दिन श्वेद आने का लक्षण हो, श्वेत कणों की वृद्धि बनी रहे, तो इस उपद्रव के हो जाने की आशंका करनी चाहिये।

पुफुस ज्वर (Pneumonia) की चिकित्सा :-

प्रथम तो इस रोग के लिये प्राणवर्धक (Supportive) चिकित्सा करनी चाहिये। रोगी को एक गर्म कमरे में जिसका तापमान ६५ डिग्री फा० के लगभग हो, आराम से लिटाये रखना चाहिये। थोड़ा उठने बैठने से भी शरीर की शक्ति का अपव्यय होता है, अत: पूर्ण विश्राम इस रोग के लिये आवश्यक है। खुली हवा या आक्सि-जन भी रोगी को पर्याप्त मिलनी चाहिये। ताकि उसके अन्दर हुई आक्सिजन की कमी और न बढ़े। अन्य ज्वरों के समान इस तीव्र ज्वर में भी शरीर के अन्दर जल की मात्रा घट जाती है। अत: रोगी को द्रवाहार पर्याप्त मात्रा में मिलना चाहिये। तीव्र ज्वर में साधारण आहार हाजमे में नहीं आता अत: रोगी को दूध, चाय तथा फल रस का आहार देना चाहिये। १ पाइन्ट गर्म जल में ४ औंस Dextrose एक सन्तरे का रस मिलाकर पिलाते रहना चाहिये। दिन रात में कम से कम ३ या ४ पाइन्ट द्रव आहार दे देना चाहिये, ताकि मुत्र में कोई न्युनता न हो। मुत्र की स्पेसिफिक ग्रेविटि देखने से पता लगे कि वह १०२० से अधिक है तो समझना चाहिये कि उसे जल न्युन मात्रा में मिल रहा है। जल के न्यून मात्रा में मिलने से रक्त वाहिनियों की स्वाभाविक, रक्त प्रेरक शक्ति (Vasomotor शक्ति) कम हो जाती है। इस शक्ति के कम हो जाने से रक्त संचार में कमी या Circulatory Failure हो जाने का भय रहता है + अत: जल की मात्रा पर्याप्त देनी चाहिये। रोगी को रात को नींद न आये और आराम न मिले तो भी उसकी प्राण शक्ति कम होती है + अत: सोने से पहले उसे गर्म गर्म जल का प्याला जिसमें निम्बू का रस तथा ग्लूकोज हो, पिला देना चाहिये। इससे भी नींद न आये तो इसमें ३-४ ड्राम Brandy मिला सकते हैं अथवा Chloral Hydrate की १०-१५ ग्रेन की मात्रा या Phenoborbitone एक १½ ग्रेन की मात्रा दे सकते हैं। हृदय को बल देने के लिये Coramine या Strychnine किसी एक का बड़ी मात्रा में प्रयोग करना चाहिये। Septicaemia या Toxaemia से (Suprarenal Gland के फेल हो जाने से) हृदय तथा रक्त संचार निर्बल हो जाते हैं अत:

इसके एक बार होने पर फिर से ठीक नहीं होता पर Metaraminol (Aramine) की १०-१५ मि. ग्रा. मांसपेशी में देना चाहिये

Prednisolone २५ मिलि० या Hydrocortisone Hemisuccinate. १०० मिलि०, ५०० सी०सी०, ५० प्र०श० ग्लूकोज द्रव के साथ शिरा द्वारा दे देना चाहिये। ८ घन्टे बाद इसे फिर दोहरा सकते हैं।

श्वास काठिन्य व मुख पर की श्यामता के लिये आक्सिजन देना चाहिये। हिक्का हो तो Chlorpromazine २५ मिलि० चार चार घन्टे पर दें। पेट में आध्मान हो तो Prostigmine १ मिलि त्वचा द्वारा दे सकते हैं या Carbachol २ मिलि० मुख से देवें। या Pituitrin १ सी०सी० त्वचा से दें। पार्श्व शूल हो तो वक्ष पर plaster या गर्म सेक देना चाहिये।

दूसरे नम्बर पर इस रोग की जीवाणु प्रतिरोधक चिकित्सा (Antimocrobial Therapy) की जाती है। इस प्रयोजन के लिये Penicillin सर्वोत्तम औषधि है। यों तो १० में से ७ रोगी बिना जीवाणु प्रतिरोधक चिकित्सा के भी सात आठ दिन में स्वयमेव ठीक हो जाते हैं। अर्थात् पुफुस में संक्रान्त हुये जीवाणु Phagocytes तथा Antibodies के द्वारा नष्ट कर दिये जाते हैं। तो भी वृद्ध और निर्बल व्यक्तियों के लिये जीवाणु प्रतिरोधक औषधि देनी अति-आवश्यक होती है। Pneumococcal तथा streptococcal रोग में Crystalline Penicillin को ५ लाख यूनिट मात्रा में ६-८ घन्टे पर 2-3 दिन देना चाहिये। Procaine Penicillin के ४ लाख Units की मात्रा में प्रति दिन या दो बार देने से एक दो दिन में ही ज्वर उतर जाता है। Friedlander's bacillus का संक्रमण हो तो streptomycin १ ग्राम प्रतिदिन दें। ज्वर उतर जाने के बाद भी दो दिन इस औषधि का प्रयोग जारी रखना चाहिये। रोग मृदु हो तो Penicillin V. (Phenoxymethyl Peni.) की गोलियां २ लाख Units की ४-४ घन्टे बाद दें, ज्वर उतरने पर ८-८ घन्टे बाद दो चार दिन दें। (१२५ मिलि० = २ लाख यूनिट) दूसरे Antibiotic Tetracycline द्रव्यों के जैसे Aureomycin ०.२५ की मात्रा में Terramycin के ०.२५ ग्राम की मात्रा में Achromycin ०.५ ग्राम मात्रा में Chloramphenicol के ०.५ ग्राम की मात्रा में तथा Ilotycin (Erythromycin) के ०.२ ग्राम की मात्रा में मुख द्वारा प्रति ६ घन्टे बाद देने से भी यह ज्वर शीघ्र उतर जाता है। १०० मिलि० मात्रा में इन्हें दिन में तीन बार मांस द्वारा भी दे सकते हैं। तीव्र (Fulminating) रोग में Erythromycin १०० मिलि० का इंजेक्शन भी मिलता है। जिसे मांस द्वारा देना चाहिये। इसी प्रकार Sulfadiazine, तथा Sulfamerazine, Sulphamezathine Sulphisoxazole (Gantrisin) या Sulphadimidine या Sulphasomidine (Elkosin, Ciba) २.० ग्राम की प्रथम मात्रा में देने तथा उसके बाद इन्हीं की आधा एक ग्राम की मात्रा प्रति ६ घन्टे बाद २-३ दिन देने से भी यह ज्वर शीघ्र ठीक हो जाता है। Sulphapyridine तथा Sulphathiazole का भी इसी प्रकार प्रयोग

लाभदायक है । Sulphamethoxypyridazine (Lederkyn) या Sulphaphenazole (Orisul) या Sulpha dimethoxine (Madrilion) के पहले २ और फिर ½ ग्राम दिन में एक बार ५ दिन तक देने से यही लाभ होता है । इन औषधियों को दो गुना Soda-Bicarb. के साथ मिलाकर दिया जाता है तथा जल का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया जाता है । Sulfadiazine Sodium या Sulfamerazine Sodium. १-२ ग्राम मात्रा में ५०० सी०सी० M/6 Sodiumlactate के साथ शिरा द्वारा भी दिया जा सकता है ।

आयुर्वेद में श्वसनक ज्वर :-

आयुर्वेद में निमोनिया या श्वसनक ज्वर को रक्तष्ठीवी ज्वर कहा गया प्रतीत होता है । इसकी गणना सन्निपात ज्वरों से हुई है तथा इसकी ८-१० दिन की मर्यादा कही गई है । यह पुफुस के रुग्ण होने से उत्पन्न होने वाला ज्वर है । पुफुस गत वायु के दूषित होने पर अर्थात् पुफुस की प्राण शक्ति के हीन हो जाने पर तथा पुफुस में कफ दोष या आम दोष के बढ़ जाने पर उसकी जीवाणुओं या उनकी विषों को नष्ट करने की शक्ति घट जाती है। ऐसी अवस्था में जब किसी दूसरे से इस रोग के विष का संक्रमण हो जाता है तब यह विष वहां रोहण करने लग जाता है + जिसके विपरीत पुफुस गत वायु, कफ, पित तीनों धातुओं की प्रतिक्रिया या प्रकोप होता है । वायु के कारण उदान गति केबढ़ जाने से खांसी उठती है । कफ के कारण पुफुस में परिस्रवण की मात्रा बढ़ जाती है । पित के प्रकुपित होने से अर्थात् वहां पक्तिकर्म के बढ़ने से ज्वर उत्पन्न होता है । इनके ठीक ठीक प्रकुपित होने से ८-१० दिन में जीवाणु का प्रतिकार हो जाने पर यह रोग शांत हो जाता है ।

निमोनिया श्वसनक या रक्तष्ठीवी ज्वर की चिकित्सा :-

रोगी में वायु दोष की शान्ति के लिये उसे पूर्ण विश्राम मिलना चाहिये तथा प्राण वायु, जल, मधु, ग्लूकोज, यूष आदि पौषक द्रव्य पर्याप्त मात्रा में मिलने चाहियें । लघुपंचमुल डालकर पकाया हुआ जल या दूध उसे पीने के लिये देना चाहिये । कफ दोष की शान्ति के लिये रोगी का स्थान गर्म होना चाहिये । उसका पेय जल आहार आदि भी गर्म होने चाहियें । औषधियों भी बल्य, पाचक, दीपक, उष्ण गुण होनी चाहियें । पहले बढ़ते ज्वर में २-३ दिन त्रिभुवन कीर्ति रस (हिंगुल, विष, त्रिकटु, सुहागा, पिप्पलीमुल,

coccus viridans

coccus

समान समान तुलसी, अदरक, धातूर रस से मर्दन) १ रत्ती मात्रा में या कस्तुरी भैरव दो रत्ती और फिर लक्ष्मी विलास या मकरध्वज वटी दो दो रत्ती की [illegible]त्रा में दिन में तीन चार बार देने चाहिये । बलगम को निकालने के लिये लक्ष्मी विलास दो रत्ती में शृंग भस्म दो रत्ती, टंकण ४ रत्ती, [illegible] मिलाकर देना लाभदायक है । वात, कफ दोषों की शान्ति के लिये दशमुल कषाय में यवक्षार डालकर या दशमुलासव या द्राक्षासव का दिन में दो तीन बार प्रयोग किया जाता है । रोगी बालक को लक्ष्मी विलास $\frac{१}{४}$ रत्ती चतुर्भद्र चूर्ण १-२ रत्ती के साथ मधु द्वारा दिन में ३-४ बार दें । शृंग-भस्म $\frac{१}{२}$ रत्ती, टंकण १ रत्ती मिला के दिन में तीन बार देने से भी कफ शान्त रहता है । छाती पर गर्म तेल मलके रुई की पट्टी बान्धा कर रखनी चाहिये

उरोविद्रधि-उर:क्षत-क्षतकास :- Abscess of the Lung-Plumonary Abscess:- suppurative Pneumonia:-

बिना क्षय रोग के पुफुस के एक प्रदेश में पूयभाव हो जाय तो उसे उरोविद्रधि कहते हैं ।

(१) श्वास द्वारा विष प्रवेश :- (Aspiration)

प्रधानत: यह रोग पूयजनक जीवाणुओं जैसे Staphylo, strepto, Pneumococci, Friedlander's Bacillus, H. influe. आदि से युक्त किसी पूयखण्ड के अन्त:श्वास के द्वारा श्वासनाली (Bronchus) में से पुफुस में प्रवेश कर जाने से होता है । Tonsillitis नासिका दन्त, आदि पर शल्यकर्म के होने के बाद जब रोगी मूर्छा में बेहोश सा पड़ा होता है तो ऐसे किसी पूय खण्ड का अन्त:श्वास के द्वारा खिंचकर एक Bronchus में उतर जाना सुगम हो जाता है । औषधि-जनित मूर्छा (Anaesthesia) में नासिका तथा आमाशय आदि से आये द्रव के किसी Bronchus के द्वारा पुफुस में पहुंच जाने का भय सदा रहता है क्योंकि उस अवस्था में Larynx या कण्ठ में होने [illegible] वाले Reflexes लुप्त हो जाते हैं । यह जीवाणु युक्त बाह्य द्रव्य बहुधा दक्षिण पुफुस में प्रवेश करता है । (क्योंकि उस में [illegible] जाने वाली नाली या Bronchus अधिक नीचे की तरफ को सीधी रहती है) तथा एक सूक्ष्म श्वासनाली के सिरे पर पहुंचकर उसे बिल्कुल बन्द करके उससे सम्बन्धित पुफुस उपखण्ड में Collapse तथा शोथ को उत्पन्न करने का कारण बन जाता है । ऐसे रोगी के लेटे हुये होने से दाहिने पुफुस के ऊर्ध्व खण्ड के शिखर के नीचे पिछले या कक्षा-गत (Axillary) उपखण्ड (Segment) में यह विद्रधि होती है । कभी कभी निम्न खण्ड के शिखर गत उपखण्ड (Apical Segment) में पाई जाती है । जीवाणु के अतिरिक्त पुफुस की प्रतिरोधक शक्ति को

न्यून करने वाले कारण भी इस रोग के कारण बन जाते हैं । इन जीवाणुओं के पाचक होने के कारण उस सूजे हुये पुफुस खण्ड में शीघ्र द्रवता या पूयभाव की प्रक्रिया हो जाती है परन्तु श्वास नाली के अन्दर शोथ होने तथा उसके बन्द होने के कारण यह पूय पहले बाहिर निकल नहीं पाता पर कुछ काल बाद शीघ्र ही यह पूय थूक के रूप में इस श्वासनाली के द्वारा बड़ी मात्रा में बाहिर [illegible] निकलता है जिससे पुफुस विद्रधि का पता चलता है ।

२.. Bronchiectasis या किसी श्वास नाली में पूय भाव हो जाने के बाद वहां से [illegible] पूय खण्ड के श्वास द्वारा नीचे उतर जाने से उपद्रव रूप में भी पुफुस में विद्रधि हो सकती है तब यह [illegible] चिरस्थायी रूप में होती है तब इसके चारों ओर Fibroblasts के आ जाने से स्नायुभाव हो जाता है ।

३.. कास जनित पुफुस शोथ (Bronchopneumonia) के उपद्रव रूप में वहां पूय भाव होकर कभी कभी चिरस्थायी विद्रधि रह जाती है । जो Friedlander's facillus और Staphylococci के संक्रमण से होती है ।

४.. श्वास नाली में कैन्सर होने पर उसके उपद्रव रूप में [illegible] पूयखण्ड के नीचे उतर जाने से पुफुस विद्रधि हो सकती है ।

५.. श्वास नाली में चिरस्थायी कास जनित शोथ होने पर वहां से पूय युक्त खण्ड के नीचे की ओर प्रसरण कर जाने से भी पुफुस में पूयभाव हो सकता है । इसीलिये इसे Suppurative Pneumonia भी कई देते हैं जो Suppurative Bronchitis या पूय कास से पृथक् रोग है ।

<u>लक्षण :-</u>

वाह्य पूय खण्ड के पुफुस में पहुंचने के १-२ दिन बाद अन्दर खांसी तथा ज्वर के लक्षण प्रकट हो जाते हैं जो श्वास नाली शोथ व पुफुस शोथ के कारण होते हैं । पुफुसावरण में शोथ के हो जाने से पार्श्वशूल (Pleuritis) का लक्षण भी होता है । पुफुस में पूयभाव के होने से सर्दी [illegible] लग के ज्वर चढ़ता रहता तथा पसीना देके उतरता या ढीला होता रहता है । उसके सांस में दुर्गन्ध आ जाती है फिर कुछ दिन बाद जब पूयमय बलगम की बड़ी मात्रा में मुख से निकलने लगती है तब इसरोग का सन्देह होने लगता है । Pneumonia में इस प्रकार का थूक नहीं आया करता । रोगी के थूक में कुछ रक्त का मिश्रण होने से इसका रंग चौकोलेट का सा होता है । देखने में यह थूक गाढ़ी पीले हरे से रंग की होती है तथा इसमें कुछ दुर्गन्ध भी होती है । २४ घन्टे

तक इसके निकलने के बाद फिर ज्वर कम हो जाता है , रोगी की अवस्था भी बहुत कुछ सुधर जाती है । यद्यपि खांसी व बलगम की निकासी कुछ कुछ जारी रहती है । इस अवस्था में उचित चिकित्सा हो जाय तो रोगी अच्छा हो जाता है । बलगम की परीक्षा करने पर उसमें Elastic Tissue तथा जीवाणु पाये जाते हैं । रोगी की रक्त परीक्षा करने से Leucocytes की वृद्धि पाई जाती है । Bronchoscopy की परीक्षा से श्वासनाली में विद्यमान बाह्य द्रव्य को देखा जा सकता है ।

पुफ्फुस षत यह विद्रधि मन्दरूप में तथा चिरस्थायी रूप में हो तो समय समय पर खांसी के साथ पूयमय थूक अधिकमात्रा में निकलती रहती है । रोगी को हलका हलका ज्वर भी रहता है । इसके निकल जाने पर ज्वर उतर जाता है । इसके अन्दर रुक जाने पर फिर ज्वर रहने लगता है । यदि पूय भली प्रकार न निकले, ठीक ठीक चिकित्सा भी न हो तो रोगी का भार घटता जाता, अशक्ति बढ़ती जाती तथा रंग भी फीका पड़ता जाता है । इस प्रकार यह रोग १-२ महीनों तक चला जाता है । इस अवस्था में अंगुलियों के सिरे मोटे हुए २ दीखते हैं । परीक्षा करने पर Consolidation के लक्षण पाये जाते हैं। श्वासनाल पर coarse crepitations भी सुनाई पड़ते हैं। Radiology में (+ve) opacity मिलती है।

रोग विनिश्चय :-

यदि कोई अधिक रोगी हो तो उसे अधिक मात्रा में, कुछ दुर्गन्धित, पूय मय, कुछ रक्त से मिश्रित थूक आने लगे तो इसी अथवा निरन्तर बढ़ती पूय मय थूक आ जाय और उसमें [illegible] रोग का निश्चय करना चाहिये । यदि पूय मय थूक वर्षों से आती हो तो श्वासनाली शैथिल्य (Bronchiectasis) ही समझना चाहिये । परन्तु पहले से दूसरा और दूसरे से पहला रोग उपद्रव रूप में हो सकते हैं । Chronic purulent Bronchitis रोग में पुफ्फुस परीक्षा सम्बन्धी चिन्ह व्यापक होते हैं । इसमें एक स्थानिक होते हैं । उसकी पूय में Elastic Tissue नहीं होता

उरःक्षय रोग धीरे धीरे प्रारम्भ होता है ।

इस रोग के समान सहसा नहीं । उसकी थूक में दुर्गन्ध नहीं होती ना ही वह मात्रा में अधिक होती है । X-Ray परीक्षा करने से पुफ्फुस में एक स्थान पर एक गोलाकार सी गहरी छाया दीखती है । Lipiodol परीक्षा करने पर वह इस विद्रधि प्रदेश में प्रवेश नहीं करता । कैन्सर के रोग में छाती पर दर्द, श्वास कृच्छ्रता और खांसी के लक्षण होते हैं । साथ ही वह रोग बड़ी आयु में होता है ।

साध्यासाध्य :-

प्रारम्भ में ही ठीक ठीक चिकित्सा करने पर यह रोग बहुधा ठीक हो जाता है । रोगी वृद्ध हो, मधुमेही, मद्यपी हो तो रोग ग्रस्त भाग में Necrosis या मृत्यु की प्रक्रिया हो जाती है ।

तथा जिस करवट पर लेटने से और मुख को नीचा करने से बलगम अधिक मात्रा में निकलता हो उसमें १५-२५ मिनट प्रातः - दोपहर सायंकाल 3 बार लेट जाये पूय अन्दर से निकलता रहना चाहिये। साथ ही रोगी की निर्बलता को दूर करने के लिए उसे Vitamins भी देने चाहिए।

इस चिकित्सा को १०-१२ दिन जारी रखने से बलगम की निकासी बहुत कम हो जाती है ~~दुर्गन्ध~~ उसकी दुर्गन्ध जाती रहती है खांसी दूर होती है भार भी कुछ बढ़ जाता है। इसके बाद रोगी को ५ लाख Proc. Penicillin इंजेक्शन द्वारा मांस द्वारा देनी चाहिए और इसे ३-४ सप्ताह जारी रखना चाहिए

इस प्रकार प्रधानतः Penicillin की चिकित्सा को ४ ~~छः~~ मास तक जारी रखने से यह रोग अच्छा हो जाता है।

इस प्रकार यदि बलगम गाढ़ी न हो के पतली हो, विशेष दुर्गन्धित हो, रंग में नीली, भूरी सी हो, रोगी अति कृश हो तो फुफुस में मृत्यु भाव या Pulmonary Gangrene के हो जाने का सन्देह करना चाहिये। यह अवस्था प्राय: घातक होती है।

चिकित्सा :- बलवर्धक आहार तथा औषधियों के अतिरिक्त निम्नलिखित Antibiotics का प्रयोग करें।

Benzyl Penicillin १० लाख यूनिट्स मात्रा में १२-१२ घन्टे बाद दे दी जाय साथ ही ·५ ग्राम Streptomycin ६-६ घन्टे पर दिन रात में चार बार दे दी जाय तो रोग का वेग शान्त होने लगता है। Pro.Penicillin. ४ लाख युनिट की मात्रा में १२-१२ घन्टे पर देने से भी लाभ होता है। या Erythromycin-(Ilotycin) १०० मिलि० मांस द्वारा या २०० मिलि० की गोलियां मुख द्वारा ६-६ घन्टे पर देवें, यह Gram Positive तथा Negative दोनों के लिये उपयोगी है। या Carbomycin(Magnamycin)- ·५-१ ग्राम मात्रा में ६-६ घन्टे पर दें। या Spiramycin (Rovamycin) ·५-१ ग्राम मात्रा में मुख द्वारा ६-६ घन्टे पर दें। ये Gram Positive जीवाणुओं के लिये विशेष उपयोगी हैं। Staphylococcus के कारण विशेषत: विद्रधि हुई हो तो Penicillin BRL1241 (Celbinin) १ ग्राम ४-४ घन्टे पर मांस द्वारा ५ दिन देना चाहिये। Friedlander's Bacillus के कारण विशेषत: हो तो Streptomycin १ ग्राम मात्रा में १२-१२ घन्टे पर दो दिन और फिर १ ग्राम मात्रा में २४ घन्टे में एक बार दें। या Sulfisoxazole (Gantrisin) १ ग्राम मात्रा में ६-६ घं. पर दें

आयुर्वेद- में प्रतीत होता है कि उरोविद्रधि को चरक ने (चि०।अ० ११) उर:क्षत नाम से पढ़ा है। उसने कहा है " कि फुफुस में क्षत हो जाने पर ऊपर छाती पर एक ओर या दोनों ओर पार्श्वशूल होता है। क्रमश: शरीर सूखता जाता, बल गिरता जाता, रंग फीका होता जाता, अग्नि मन्द होती जाती, ज्वर रहता, बिना गढ़ा हुआ अर्थात् ढीला कुछ नीले पीले से रंग का, दुर्गन्ध युक्त बलगम बहुत अधिक मात्रा में मुख से खांसी के द्वारा निकलता है जिसमें रक्त का भी मिश्रण होता है, रोगी क्षीण होता जाता है। पहले इस रोग का पता नहीं चलता, बाद में रक्त युक्त बलगम के खांसी के साथ गिरने पर यह रोग स्पष्ट हो जाता है।

कास रोग के वर्णन में चरक ने (चि०।अ०१८) उर: क्षत कास कहा है। उसने कहा है " उर: इस रोग में होने वाले कास को क्षत के कारण पहले शुष्क खांसी आती रहती है फिर पार्श्व शूल तथा खांसी

के साथ बलगम निकलने लगती है जिसमें रक्त का मिश्रण भी होता है। इन लक्षणों के साथ साथ ज्वर, श्वासकृच्छ्रता, छाती पर स्पर्शाक्षमता, स्वरभंग आदि के लक्षण भी होते हैं।"

चरक ने (चि० १८।श्लो० १३८) तथा वाग्भट्ट ने (निदान अ० ३।श्लो० २८) इस उर:क्षत से उत्पन्न खांसी को वात-पित्त दोषों से उत्पन्न होने वाला रोग कहा है। अर्थात् यह रोग फुफ्फुस की प्राण शक्ति की हीनता तथा उसमें तीव्र शोथ की प्रक्रिया के हो जाने से होता है। इसीलिये उन्होंने इसके लिये प्राणवर्धक, संतर्पण गुण, शीत प्रधान चिकित्सा का विधान किया है। चरक के अनुसार दूध, घृत, मधु अथवा जांगल पक्षि-मांस-रस आदि बल्य आहारों के सेवन, दूध अथवा घृत के योग से साधित तैलों के मर्दन, जीवनीय घृत, अमृत-प्राश-घृत आदि बल्य घृतों के सेवन, तथा मन:शिला और गीली बटजटों के समान समान मात्रा में पीसकर घृत युक्त करके उसके धूम से बलगम को निकाल देने से लाभ हो जाता है। इस धूम के बाद तीतर मांसरस से भोजन देने को कहा है। किसी प्रकार के मृदु धूमपान से बलगम को अन्दर से प्रवृत्त करते रहने पर उसने बल दिया है परन्तु धूमपान के बाद बल्य औषधियां, बल्य आहार देने के लिये भी कहा है।

कासजनित फुफ्फुस ज्वर :-Broncho Pneumonia, Catarrhal Pneumonia: Lobular Pneumonia :-

युवावस्था में होने वाले फुफ्फुस ज्वर (Pneumonia) में Pneumococci का संक्रमण गले में से सीधा बहुधा किसी एक फुफ्फुस में होता है और उसका एक खण्ड (Lobe) सूजकर ठोस हो जाता है। परन्तु शिशुओं (बालकों) तथा बड़ी आयु के वृद्ध पुरुषों में शीतकाल में पहले खांसी का रोग होकर अर्थात् बड़ी श्वास नालियों में शोथ होकर वह पहले सूक्ष्म श्वास नालियों (Bronchioles) में और वहां से फिर श्वास कोष्ठकों (Alveoli) में प्रसरण कर जाता है। या बड़ी श्वास नालियों में विद्यमान जीवाणु युक्त बलगम का कोई खण्ड अन्त:श्वास के साथ श्वास नाली में नीचे उतर जाता है और छोटी नालियों में संक्रमण का कारण बनता है। अर्थात् दोनों फुफ्फुसों की [illegible] अनेकानेक खण्डिकाओं (Lobules) में शोथ प्रसरण कर जाता है जिससे वे ठोस हो जाती हैं। इस फुफ्फुस खण्डिका शोथ (Lobular Pneumonia) को कास जनित फुफ्फुस ज्वर कहते हैं। (इसे Aspiration Pneumonia [illegible] Bronchopneumonia) यह दो प्रकार का होता है। (१) स्वतन्त्र कास जनित फुफ्फुस ज्वर Primary Broncho Pneumonia, (२) उपद्रव कास जनित फुफ्फुस ज्वर (Secondary B.Pneumonia)

स्वतंत्र कास जनित फुफ्फुस ज्वर (P.B.P) नि-

प्रकृति के १-२ वर्ष के शिशुओं में शीतकाल में खांसी होने पर Pneumococci का और कभी कभी Streptococci, Staphylococci, N. Catarrhalis. आदि का संक्रमण शीघ्र ही नालियों के द्वारा उनके वायु कोष्ठकों में पहुंच जाता है। जिससे सूक्ष्म श्वास नालियों के साथ साथ दोनों पुफुसों की अनेक खण्डिकायें सूज जाती हैं अर्थात् उनमें Catarrhal Inflammation हो जाती है तथा उनके पुफुस की श्वास नालियां तथा वायु कोष्ठक श्वेत कणों Polymorphs से और आभ्यन्तर स्तर के झड़े हुये सेलों से युक्त द्रव (Exudation) से भर जाते हैं। फिर सूक्ष्म नालियों के स्राव के द्वारा बन्द हो जाने से वायु कोष्ठकों में हवा नहीं पहुंच पाती जो थोड़ी हवा उनमें पहली होती है वह विलीन हो जाती है जिससे कोष्ठक बन्द या Collapsed हो जाते हैं। इस प्रकार कुछ कोष्ठक बन्द हो जाते, कुछ द्रव से भर कर ठोस हो जाते, कुछ हवा से भरे होते हैं। इस रोग में खांसी के साथ तापमान सहसा बढ़कर १०३-१०४ डिग्री तक पहुंच जाता है। शिशु आवाज़ के साथ शीघ्र शीघ्र श्वास लेने लगता है। छाती की परीक्षा करने पर अन्त:श्वास लेने पर निचली पसलियां उठने के स्थान पर अन्दर की ओर धंसती दिखाई पड़ती हैं। दोनों ओर Rhonchi तथा पुफुस के तलों पर मृदु (Fine) या स्थूल (Coarse) Rales सुनाई पड़ते हैं। शिशु विशेष निर्बल न हो तो प्राय: यह ज्वर ५-७ दिन में क्रमश: उतर जाता है। यह ज्वर जारी रहे तो उर:क्षय का सन्देह करना चाहिये।

(२) उपद्रवरूप कास जनित पुफुस ज्वर (Secondary Broncho Pneumonia)- कास जनित पुफुस ज्वर का रोग बालकों में रोमान्तिका (Measles) काली खांसी तथा मसूरिका के उपद्रव के रूप में तथा वृद्ध व्यक्तियों में चिरस्थायी हृदयरोग, वृक्करोग, के उपद्रव रूप में या मधुमेह, कैन्सर आदि के उपद्रव रूप में होता है। स्पष्ट है इन अवस्थाओं में यह रोग प्राय: बड़ा भयंकर होता है और घातक ही होता है। Influenza में उपद्रव रूप में भी यह रोग होता है तथा प्रधानतया Streptococcus Haemolyticus के पुफुस में संक्रमण कर जाने से होता है। उसके सहायक रूप में Pneumococci, Staphylococci, H. Influenzae आदि भी होते हैं। इनकी प्रतिक्रिया के रूप में पहले बड़ी श्वासनालियाँ फिर छोटी श्वास नालियों और फिर उनसे सम्बन्धित वायु कोष्ठकों (Alveoli) में श्लैष्मिक (Catarrhal) शोथ प्रसरण करता जाता है। इस शोथ के कारण पहले तो सूक्ष्म श्वास नालियां तथा उनसे सम्बन्धित वायु कोष्ठक पूय तथा अन्तस्तर के मरे हुये सेलों से युक्त स्राव (Exudation) के द्वारा भर जाते हैं। सूक्ष्म श्वास नालियों के स्राव द्वारा बन्द हो जाने

से वायु कोष्ठकों में न बाहिर की हवा जा पाती, ना ही वहां पड़ी हुई हवा बाहर निकल पाती है। फिर जब यह रुकी हुई हवा वहां विलीन हो जाती है तो वायु कोष्ठकों की दीवारें गिर जाती हैं अर्थात् Collapsed हो जाती हैं। अर्थात् सैञ्जिकाओं (Lobules) के कुछ कुछ भाग तो दोनों फेफड़ों मे विशेषत: निम्न खण्डों (Lower Lobes) के पिछले भागों में ठोस हो जाते हैं तथा इन ठोस हुए भागों के आसपास के वायु कोष्ठकों में हवा के अधिक भर जाने से वे फुल जाते अर्थात् Emphysematous हो जाते हैं। इस प्रकार फेफड़ों में वायु कोष्ठकों (Lobules) के कुछ ठोस होते, कुछ अधिक हवा से भरे हुए होते, कुछ नार्मल होते हैं। जब वायु कोष्ठकों में शोथ (Catarrh) मात्र होता है, रोग मृदु रूप में होता है। पर यदि कुछ कोष्ठक समूहों (Lobules) में पूयभाव (Abscess formation या Gangrene) हो जाय जैसा वृद्धों में हो जाता है तो यह रोग भयंकर रुप ले लेता है। बालकों में वायु कोष्ठकों का शोथ मृदु हो तो यह शोथ शान्त हो जाता है और कोई स्थायी दुष्प्रभाव नहीं रह जाता। परन्तु बहुधा जब यह रोग तीव्र रुप में होता है तब इन वायु कोष्ठकों की दीवारों में हुई क्षति स्नायु तन्तु (Fibrosis) के द्वारा होती है जिससे ये मृदु न रह के कठोर हो जाते हैं अर्थात् इनमें अपूर्ण प्रसार या Atelectasis या श्वास नाली शैथिल्य Bronchiectasis का उपद्रव न्यूनाधिक रुप में रह जाता है।

लक्षण :-

जब तक शोथ बड़ी श्वास नालियों में रहता है खांसी के साथ मृदु ज्वर रहता है जो सांयकाल बढ़ता प्रात: कम हो जाता, परन्तु जब शोथ सूक्ष्म श्वास नालियों में प्रसरण करता है तब विष संचार या Toxaemia के कारण ज्वर बढ़ जाता तथा श्वास गति भी तीव्र हो जाती है। हृदय गति तथा नाड़ी गति भी तीव्र हो जाती है (अर्थात् नाड़ी १२० तथा श्वासगति ५०-६० प्र० मि० तक हो जाती है। श्वास कोष्ठकों के अन्दर शोथ के प्रसरण करने से श्वास उथला उथला होता तथा रक्त में आक्सिजन के कम हो जाने से चेहरे पर नीलापन (Cyanosis) झलकता तथा रोगी में मूर्छा, प्रलाप और बेचैनी के लक्षण प्रकट हो जाते हैं। आक्सिजन की कमी तथा Toxaemia की वृद्धि से हृदय के फेल हो जाने से मृत्यु होती है।

रोगी की परीक्षा करने पर उसकी जिव्हा खुश्क होती, नथने चलते दीखते, श्वास गति तीव्र होती, प्यास अधिक लगती, रोगी की छाती में दर्द तो कोई नहीं होता, पर देखने में अन्त:

श्वास तो छोटा, बहि:श्वास कुछ लम्बा दीखता है । श्वास प्रश्वास के बीच का विराम जो वहि श्वास के बाद हुआ करता है अंत:श्वास के बाद होता है । पुफुस में कहीं कहीं पर जहां कुछ ठोसपन हो गया होता है श्वास प्रश्वास ध्वनि Bronchial या Tubular क़िस्म की सुनाई पड़ती है । तथा वहां वहां पर वाचिक (Vocal) ध्वनि भी ऊंची सुनती है । दोनों ओर Rhonchi तथा पुफुस तलों पर Rales भी सुनाई पड़ते हैं । श्रवण से हृदय गति तीव्रप्रतीत होती है । Pulmonary क्षेत्र पर हृदय का दूसरा शब्द ऊंचा सुनता है । मूत्र मात्रा में कम तथा गहरे रंग का होता है । बलगम आये तो वह पूय युक्त होता है ।

यह रोग २-३ सप्ताह चलता है । इसे सदा ही भयंकर समझना चाहिये । बालक छोटी आयु का हो, वृद्ध बड़ी आयु का हो, नाड़ी गति १३० हो, चेहरे पर नीलापन हो, रोगी बेचैन हो, रक्त भार गिरा हुआ हो तो हृदय के फेल होने की आशंका करनी चाहिये । यदि यह रोग बालक में ३ सप्ताह से अधिक रहे तो उर:दाय रोग का सन्देह करना चाहिये ।

चिकित्सा :-

कास जनित पुफुस ज्वर के रोगी शिशु या वृद्ध को ऐसे कमरे में जिसका तापमान रात दिन ६५ फा० डिग्री के आस-पास रहता हो, आराम से लिटाये रखना चाहिये । कमरे के वायुमण्डल को आर्द्र तथा गर्म रखने के लिये कमरे में गर्म जल की भाप चलती रहनी चाहिये जिसमें Tr.Benzoin मिला हुआ हो । रोगी बालक की शक्ति के कायम रखने के लिये प्रति ३ घन्टे पर उसे ३-४ औंस दूध इतना ही जल और दो चम्मच (८ ग्राम) Lactose मिला के बोतल या चमचे से देना चाहिये । पानी मिलाने से पहले प्रति औंस दूध में २ ग्रेन Sodium Cit. मिला देने से बालक को दूध सुगमता से हजम हो जाता है । दूध देने के दो समयों के बीच बीच में आधी ताकत का न सैलाइन भी उचित मात्रा में बाल द्रवांश की कमी न हो । बालक को रेचन न हो, तो दो दो दिन के बाद Glycerin Suppository लगा के या Syrup Ficorum १ छोटा चम्मच देकर मल त्याग करा देना चाहिये ।

औषधियों में से बालक को Procaine Penicillin को ३ लाख युनिट मात्रा में १२-१२ घन्टे बाद मांस द्वारा देना चा[हिये] या Penicillin G. को दो वर्ष तक की आयु तक १० लाख युनिट

दैनिक मात्रा में और ५ वर्ष तक बालक में २० लाख युनिट दैनिक मात्रा में २-३ बार बांट के दें । या Penicillin V (१२५ मिलि० की गोली में २ लाख युनिट) ६०-१२० मिलि० मात्रा में प्रति चार घन्टे बाद देनी चाहिये । या Achromycin(Tetracycline Hydro chloride.) की प्रति किलोग्राम भार के पीछे १२$\frac{१}{२}$ मिलि० दैनिक मात्रा में देना चाहिये । इसके Syrup के ४ मिलिमीटर में १२५ मिलि० औषधि होती है । इसकी गोली २५० मिलि० की मिलती हैं । Sulphadiazine या Sulphamezathine को प्रति पौण्ड भार के पीछे १ ग्रेन की दैनिक मात्रा में बांट के ६ बार अर्थात् ४-४ घन्टे पर देना चाहिये + साथ ही Sodabicarb का मिश्रण दे देना चाहिये । या Sulphafurazole(Gantrisin) मात्रा १-२ ग्राम ६-६ घन्टे पर ३ वर्ष तक के बालक की मात्रा इसकी $\frac{१}{३}$ है) Syrup के रूप में प्रति पौण्ड भार के पीछे ५० मिलि० मात्रा में प्रति ६ घन्टे पर देना चाहिये । या Sulphasomidine(Elkosin) जिसकी ५०० मिलि० की गोलियां या १ चम्मच सीरप में ५०० मिलि० औषधि होती है बड़ों को १-१ ग्राम मात्रा में ४-४ घन्टे बाद तथा बच्चों को इसकी एक तिहाई मात्रा ४-४ घन्टे पर देनी चाहिये ।

H.Influenzae के कारण या काली खांसी में B.Pertussis के कारण फुफ्फुस शोथ का रोग हो तो Chloramphenicoal १२५ मिलि० मात्रा में ३-३ घन्टे बाद दो दिन देना चाहिये या Penicillin तथा Streptomycin दोनों का मिलित प्रयोग करना चाहिये ।

शुष्क खांसी के लिये प्रारम्भ में बड़ों में Pot. Cit. Bicarb;Pot.Acet;Pot. प्रत्येक १०-१५ ग्रेन मिला के Aquachlorof. १ औंस में दिन में ३-४ बार देवें । फिर जब बलगम निकलने लगे तब Ammon. Carb. ३ ग्रेन, Tincture Squill ६ बुन्द, Tincture ipecac. १० बुंद Tincture Senega. २० बुन्द का मिश्रण दिन में ३-४ बार देवें । हृदय की निर्बलता के लिये शिशु को Coramine आधी मिलिलीटर मात्रा में त्वचा द्वारा ४-४ घन्टे पर दें । बेचैनी के लिये Brandy २० बुन्द मात्रा में आधा औंस जल में ४-४ घन्टे पर देवें । पेट में अफारा हो तो बस्ति करें या Prostigmine आधा मिलिग्राम मात्रा में त्वचा द्वारा दें । चेहरे पर नीलापन (anoxia) होने लगे तो [illegible] कैथिटर द्वारा आक्सिजन देना प्रारम्भ करें ।

आयुर्वेदानुसार :-

पुफुस ज्वर की तरह भी बालकों व वृद्धों में पाये जाने वाला वात कफोल्वण सन्निपात ज्वर है । जिसमें पुफुस की वातिक या प्राणसम्बन्धी निर्बलता तथा कफ वृद्धि के कारण उसमें जीवाणु संक्रमण होकर खांसी, जुकाम आदि उपद्रव रुप में पुफुस शोथ हो जाता है । कफ की शान्ति के लिये कफ-केतु, टंकण, शृंगभस्म, आदि औषधियों का प्रयोग करना चाहिये । वमन तथा लंघन कराना चाहिये वात वृद्धि की शान्ति के लिये उसे पर्याप्त जल के साथ मधु, तथा ग्लूकोज देना चाहिये । लघुपंचमुल क्वाथ, लक्ष्मीविलास, कस्तुरी भैरव आदि का प्रयोग कराना चाहिये ।

ऊर्ध्वश्वास-श्वासकोष्ठक शैथिल्य-श्वास काठिन्य Emphysema (Inflated Lungs) Alveolarectasis..

पिछली मध्यम आयु के व्यक्तियों में विशेषत: पुरुषों में दोनों पुफुसों के अन्दर चिरस्थायी रुप से जब अधिक हवा भरी रहती है, अर्थात् निम्न पुफुसों के कोष्ठक श्वास हवा से फूले रहते हैं तब उसे कोष्ठक शैथिल्य का रोग कहते हैं । क्योंकि इसमें रोगी को बल लगाकर अन्दर की हवा को बाहिर निकालना पड़ता है इसे ऊर्ध्वश्वास भी कहा जाता है । श्वासरोग (Asthma) में थोड़ी देर के लिये ही श्वास कोष्ठकों में अधिक हवा रुकती है । इस रोग में उनके अन्दर सदा ही अधिक हवा भरी रहती है जिससे वहां रक्त में से CO_2 की निकासी तथा रक्त में O_2 का प्रवेश कम हो जाता है ।

कारण तथा सम्प्राप्ति प्रकार -

बड़ी छोटी श्वास नालियों में वर्षों तक शोथ या संकोच (Spasm) का कष्ट बना रहे, अर्थात् खांसी या सांस का रोग चिरस्थायी रुप में रहे तो श्वास कोष्ठकों पर जोर पड़ते पड़ते उन का लचकीलापन कम हो जाता है जिससे उनमें अन्दर की हवा को बाहिर फेंकने की शक्ति घट जाती है । सम्भव है कुछ एक के पुफुसों के कोष्ठकों में ही नहीं उनके (पुफुसों के) सब अवयवों में ही लचकीलापन जन्म से कम होता है ।

अत: श्वास के समय तो स्वभावत: ही श्वासनालियों के स्रोत फैल जाते हैं जिससे हवा अन्दर तो सुगमता से या कुछ रुकावट से प्रवेश कर जाती है पर यदि सूक्ष्म श्वास नालियों में शोथ रहता हो या उनमें कफद्रव भरा रहता हो या उनमें स्तम्भ(Spas-

P.S. (rupturing or fibrosis or Thickened arterial walls)

का वेग होता रहता हो जैसा कि खांसी तथा सांस के दौरों के समय होता है तब बहि:श्वास के समय जब श्वास सम्बन्धी सभी स्रोततंग होने लगते हैं तो इन रोगियों में वे बिल्कुल बन्द से ही हो जाते हैं जिससे वायु बाहर नहीं निकल पाती, वह पुफुसों के निम्न भागों में रुकी रह जाती है। इस प्रकार अन्त:श्वास के समय तो हवा अन्दर पुफुस कोष्ठकों में चली जाती है जिससे पहले से ही हवा से भरे हुए कोष्ठक और अधिक हवा से तन जाते हैं पर बहि:श्वास के समय उनकी हवा ऊपर के स्रोतों के तंग होने के कारण बाहिर निकल नहीं पाती इस प्रकार पुफुस-कोष्ठकों पर सदा हवा का अधिक दबाव बना ही रहता है। इस प्रकार वायु कोष्ठकों में जाने वाली सूक्ष्मनालियाँ (Ducts या Infundibulae) तथा कोष्ठकों की दीवारों में क्षीणता की प्रक्रिया हो जाती है। उनका लचकीलापन कम हो जाता है, वे स्थायी रूप में फैल जातीं व शिथिल हो जाती हैं। इस प्रकार अभिप्राय यह है कि जब अंत: श्वास तो प्रबल हो और बहि:श्वास में अवरोध हो तो वायु कोष्ठकों पर दबाव पड़ने से वे शिथिल हो जाते या फैल जाते हैं। वायु कोष्ठकों के फैल जाने व कठोर हो जाने से श्वास लेने में तथा श्वास फेंकने में रोगी को कुछ यत्न करना पड़ता है।

ऐसे रुग्ण पुफुस के एक छोटे खण्ड (Lobule) की परीक्षा करने पर पता लगता है कि उसकी सूक्ष्म नालियां (Bronchioles) तथा आसपास के सब कोष्ठक फैल कर बड़े हो गये हैं। कोष्ठकों से परदे या उनकी दीवारें पतली पड़ गई हैं या क्षीण होकर लुप्त भी हो गई हैं जिससे अनेक छोटे छोटे कोष्ठकों के मिल जाने से बड़े बड़े कोष्ठक (Bullae) बन गये हैं जिनमें लालिमा के स्थान पर फीका पन तथा लचकीलेपन के स्थान पर कठोरता आ गई है। मध्यमाकार की श्वास नालियों के अन्दर शोथ होता है तथा उनमें पूय युक्त कफ (Mucopus) भी जगह जगह पर होता है।

कोष्ठकों की दीवारों के क्षीण हो जाने व लुप्त हो जाने से पुफुस-धमनी की अनेकानेक सूक्ष्म सिराओं का स्रोत तंग हो जाता अर्थात् उनमें Thrombosis हो जाता है तथा कुछ कोष्ठकों के नष्ट हो जाने से कुछ पुफुस धमनी सिरायें (Pulmonary Capillaries) लुप्त हो जाती हैं इस प्रकार पुफुस में व रक्त में आक्सिजन की मात्रा घट जाती है। रोगी में पुफुस कोष्ठकों के शिथिल होकर फैल जाने से उस हवा की मात्रा जो प्रबल बहि:श्वास के बाद अन्दर पुफुसों में रह जाती जिसे Residualair कहते हैं, नार्मल से दुगनी के लगभग होती है। (नार्मल १५०० सी०सी०)

रोगी के पुफुस में बाहिर की शुद्ध हवा का आवागमन (Ventilation) भी कम हो जाता है अर्थात् १ मिनट में जितनी हवा पुफुस में आया करती है जिसे Maximum Breathing Capacity कहते हैं वह इस रोगी में बहुत घट जाती है। (साधारणत: १०० लिटर से अधिक होती है। इसमें चतुर्थांश तक रह जाती है) रोगी की Vital Capacity भी आधी तिहाई रह जाती है। (नार्मल ४०००-५००० सी०सी०)

स्वस्थ पुफुस अत्यन्त लचकीला होता है। हवा उसके अन्दर ही होती है। चारों ओर के प्रदेश अर्थात् पुफुसावरण कोष (Pleural Cavity) में सर्वथा ही नहीं होती। पुफुस में हवा केवल कण्ठ से ही आती व कण्ठ से ही निकलती है। इस प्रकार पुफुस के चारों ओर का दबाव (Intrapleural Pressure) "माईनस" होता है। अन्त:श्वास के समय यह दबाव -८ और बहि:श्वास के समय -१४ Centimetre of Water होता है। इस रोग में श्वास नालियों में अवरोध तथा पुफुस के कठोर हो जाने के कारण यह दबाव अन्त:श्वास के समय -५ तथा बहि:श्वास के समय + १० या इससे भी अधिक Centimetres of Water तक रहता है। इस दबाव के बढ़ जाने से ही बहि:श्वास के समय रोगी को बल लगा के हवा को बाहिर फेंकना पड़ता है तथा बहि:श्वास की लम्बाई भी अधिक होती है।

पुफुसों में अधिक हवा के भरे रहने (Hyperinflation) से तथा उनमें न्यूनाधिक कठोरता (Interstitial Fibrosis) के हो जाने से छाती की मांस पेशियों पर विशेषत: Diaphragm पर जो श्वास की प्रधान पेशी है, संकोचक (Tonic) प्रभाव पड़ता है, वह सदा ही नीचे की तरफ झुकी हुई एवं अधिक चपटी रहती है। अन्त:श्वास के लेने पर उसमें और संकोच विशेष नहीं होता। उसमें स्वल्प सा संकोच होने से निचली छाती के दोनों पार्श्व तथा उसका अगला भाग कुछ अन्दर की ओर खिंच जाते हैं। रोग कुछ अधिक बढ़ा हुआ हो तो पुफुसों के निचले भागों में अन्त:श्वास लेने पर भी कोई विस्तार नहीं होता। अर्थात् वे श्वास प्रश्वास में भाग लेते ही नहीं। इस प्रकार जब रोगी की सांस [illegible] लेने व उसे बाहिर फेंकने की शक्ति घट जाती है तब रक्त को आक्सिजन की मात्रा कम मिलती है (Anoxia)। पुफुस कोष्ठकों की हवा में तथा रक्त के अन्दर कार्बनडाइऑक्साइड की मात्रा बढ़ जाती है (Hypercapnia) तथा उसके बढ़ने से रक्त में अम्लीयता (Acidosis) भी बढ़ जाती है। इसकी वृद्धि सिर दर्द, मांस पेशियों में कम्प तथा [illegible] निद्रालुता से सूचित होती है।

जब रक्त में कार्बनडाइऑक्साइड की मात्रा हर समय ही बढ़ी रहती है तो Medulla में विद्यमान श्वास केन्द्र (Respi.Centre) पर उसका उत्तेजक प्रभाव होना बन्द हो जाता है। (अर्थात् केन्द्र Refactory हो जाता है) अब तो रक्त में जो आक्सिजन की कमी रहती है उसके Carotid Bodies तथा Aorta के Chemoreceptors के ऊपर पड़े प्रभाव के द्वारा श्वास केन्द्र को उत्तेजना मिलती है एवं श्वास प्रश्वास गति ठीक ठीक चलती रहती है। इसीलिये ऐसे रोगी को शुद्ध आक्सिजन अधिक मात्रा में नहीं दी जा सकती है। इसी प्रकार श्वास के कष्ट को कम करने के उद्देश्य से मार्फिया का प्रयोग भी नहीं किया जाता क्योंकि उससे Chemoreceptors की क्रिया के मन्द हो जाने एवं Acidosis होकर निद्रालुता व मूर्छा के हो जाने का भय रहता है।

इस रोग में पुफुस धमनी की पुफुस में व्याप्त शाखाओं प्रशाखाओं में Atheroma हो जाने से व उनकी दीवारों के कठोर हो जाने से अर्थात् उनमें Arteriosclerosis के हो जाने से पुफुस में रक्त भार बढ़कर $\frac{४०}{१५}$ M.M.of Mercury या इससे भी अधिक हो जाता है (नार्मल $\frac{२०-३०}{८}$) इस धमनी में दबाव के बढ़ने से दक्षिण हृदय पर कार्यभार बढ़ जाता है जिससे दक्षिण क्षेपक (Ventricle) आकार में बड़ा या शिथिल हो जाता है (Carpulmonale)Tricuspid Valve, में से कुछ रक्त दक्षिण क्षेपक कोष्ठ में से दक्षिण ग्राहक कोष्ठक में आने लगता है तथा यकृत् और शरीर की शिराओं में रक्त अधिकाधिक रुकने लगता है।

लक्षण :-

ऊर्ध्व श्वास का यह रोग अज्ञात रूप में धीरे धीरे आरम्भ होता है। पहले शीतकाल में आकाश में विशेष नमी के बढ़ जाने पर खांसी उठने लगती है जिसके बीच में श्वास रोग का दौरा हो जाता है। श्वास नालियों के शोथ के कारण उसमें पतली (Mucous) या गाढ़ी पूय (Mucopus) बलगम भी गिरती है। श्रम करने पर तथा श्वास चढ़ जाने तथा रात को सो जाने पर खांसी होकर नींद टूट जाने और उठकर बैठ जाने की उसे शिकायत रहती है ऐसे समय में श्वास नालियों के बलगम के कारण या संकोच के कारण बन्द हो जाने पर अन्त:श्वास में अन्दर ली गई हवा को बाहर फेंकना कठिन हो जाता है। रोगी बैठ के और बल लगाके उसे बाहिर फेंकने का यत्न करता है। इसीलिये इसे उर्ध्वश्वास (Expiratory Dyspnoea) रोग कहा जाता है। बलगम के निकल जाने पर फिर ऊर्ध्व श्वास का वेग घट जाता है। ऊर्ध्व श्वास के इस लक्षण के साथ साथ रो

साधारणत: यह ३:८ होता है।

के चेहरे पर श्यामता (Cyanosis) का लक्षण भी होता है । महाश्वास पेशी (Diaphragm) की गति का विस्तार जितना बैठी अवस्था में होता है उतना लेटे हुए नहीं होता । इसीलिये रोगी को लेटे हुए उठकर बैठ जाना पड़ता है ।

शारीरिक लक्षण :- (Signs)

पुफुसों में फूल जाने से रोगी की छाती कुप्पे की तरह (Barrel) की सी दीखती है अर्थात् उसका आगे पीछे का व्यास, दांये बांये व्यास जितना ही हो जाता है । उरोस्थि (Sternum) आगे की और उभरी होती हैं । उसके ऊपर के खंड (Manubrium) तथा बीच के खण्ड (Gladiolus) के बीच का कोण उभरा हुआ होता है । रीढ़ की हड्डी का उपरला भाग पीछे की तरफ कुछ गोल हुआ २ दीखता है । पसलियां कुछ कुछ पड़ी हुई स्थिति (Horizontal) लेलेती हैं । पसलियों के बीच के अन्तर भी कुछ चौड़े हो जाते हैं । अन्त:श्वास के समय छाती विशेष फूलती नहीं बहि:श्वास के समय विशेष सुकड़ती नहीं । चुचुक प्रदेश पर माप लिया जाय तो इन दोनोंमेंबाप्धौ एक इंच का ही अन्तर होता है । (नार्मल २- इंच) हंसली की हड्डी के ऊपर का गढ़ा (Supraclavicula-rfossa) भरा हुआ दीखता है । ग्रीवा लम्बाई में छोटी दीखती है । उस पर Sternomastoid मांस पेशियां तथा Jugular Veins अधिक स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं । पसलियों की नीचे का बीच का कोण (Subcostal Angle) कुछ चौड़ा दीखता है । पुफुसों के फूलकर हृदय पर छा जाने से हृदय का स्पन्दन न तो दीखता है, ना ही स्पर्शन से अनुभव होता है । छाती में होने वाला वाचिक कम्पन (Vocal Fremitus) स्पर्शन करने से कम प्रतीत होता है । छाती पर टकोर की आवाज ऊंची होती है । हृदय प्रदेश पर हलकी टकोर मन्द हुआ करती है पर पुफुस के बीच में आ जाने से वह उतनी मन्द नहीं रहती ।

पुफुस में श्वास प्रश्वास से उत्पन्न होने वाली ध्वनि (Vesicular murmur) नीची, सुनाई पड़ती है। बहि:श्वास की आवाज कुछ लम्बी व स्पष्ट सुनाई पड़ती है । श्वास नालियों के तंग होने के कारण बहिश्वासों के साथ सीटियां (Rhonchi) सुनाई पड़ती हैं । खांसी गीली हो, श्वास नालियों में कुछ शैथिल्य (Bronchiectasis) हो तो निचले भागों पर बुल बुलों की आवाज(Moist-Rales) भी सुनाई पड़ती है । थूक भागदार चिपचिपी तथा पुयवुक्त होती है । रोगी के लिये फुंक मार करजलती आग को बुझाना कठिन होता है । X-Ray द्वारा परीक्षा करने पर पुफुस साफ (Translucent) दीखते, पसलियां पड़ी

दक्षिण हृदय आशा में बढ़ा होजाता है

हुई दिशा में, उनके बीच के अन्तर बड़े तथा महाश्वास पेशी नीचे झुकी हुई, चपटी दीखती है । उसकी चेष्टा कम होती है । Hilla पाद्म शिराओं की छाया अधिक स्पष्ट दीखती है दक्षिण हृदय आकार में बड़ा दीखता है।

साध्यासाध्य :-

यह रोग वर्षों तक रहता है । खुश्क गर्म वायु मण्डल में बढ़ने नहीं पाता, शीत तथा गीले वायुमन्डल मेंबढ़ता है । यदि श्वास और खांसी के दौरे होते ही रहें तो पुफुसों के दृढ़ हो जाने, अर्थात् उनमें Non-Specific Fibrosis के हो जाने, या दायजनित Fibrosis के हो जाने, या किसी कोष्ठक के Pleura में फट जाने से वहां हवा हो जाने (Pneumothorax), या दक्षिण हृदय पर कार्यभार के बढ़ जाने पर, उसके आकार में बड़े हो जाने, (Cor.Pulmonale) और शिराओं में रक्त भार के बढ़ जाने, यकृत् के आकार में बढ़ जाने, पैरों के भारी हो जाने, रक्त में आक्सिजन की कमी से शरीर, मन व अग्नि के निर्बल हो जाने के उपद्रव हो जाते हैं ।

जीर्ण पुफुस रोग जनित हृदय नैर्बल्य :- (Pulmonary Heart Disease या Emphysema Heart Disease).

ऊर्ध्व श्वास रोगियों में से एक तिहाई से आधे रोगियों में दक्षिण हृदय नैर्बल्य का उपद्रव हो जाया करता है। इस के अतिरिक्त जीर्ण कास (C.Bronchitis) या श्वास नाली शैथिल्य (Bronchiectasis) में भी उपद्रव रूप में यह रोग होता है । इसी प्रकार पुफुस में स्नायुभाव (Fibrosis हो, या Fibroid Lung का रोग हो) हो जैसे कि बालक पन में रोमान्तिका (Measles) या संक्रामक कास (Whooping Cough) के उपद्रव के कारण होता है या उर:दाय रोग जनित स्नायुभाव हो जिसका पता एक ओर की छाती के शिखर के भाग के कुछ दब जाने से लगता है यह उपद्रव हो सकता है ।

इन सब रोगों में पुफुस के वायु कोष्ठकों में कार्बनडाईऑक्साइड गैस का तथा आक्सिजन का आदान प्रदान कम हो जाता है । परिणामत: रक्त में आक्सिजन की मात्रा कम हो जाती है तथा क्योंकि धमनियों के रक्त में जब जब भी आक्सिजन की मात्रा कम होती है, तब तब पुफुस सम्बन्धी धमनियों (Pulmonary Arte.) में रक्तभार बढ़ जाता है । सम्भवत: धमनियों में संकोच के बढ़ जाने से ऐसा होता प्रतीत होता है । उनमें रक्त भार के $\frac{60}{20}$ M.M.Hg. तक बढ़ जाने पर पहले तो दक्षिण क्षेपक आकार में बड़ा हो जाता है परन्तु पुफुस रोगों में रक्त के अन्दर आक्सिजन की कमी (Anoxia) हो जाने के का

Rhonchi के साथ 2 फुफुसतलों प (Rales) भी सुनाई पड़ते हैं

P.S. तथा धूम्रपान से

वह शिथिल भी होने लगता है ।

लक्षण :-

पहले तो पुफ्फुस रोग के कारण शीतकाल में ही खांसी का कष्ट रहता है फिर वर्ष भर ही खांसी तथा बलगम गिरने के लक्षण रहते हैं फिर जब आक्सिजन की कमी (७० प्र०श० से कम) विशेष हो जाती है तब हृदय की निर्बलता के हो जाने से श्रम अर्थात् थकावट और मुख पर श्यामता (Cyanosis) के लक्षण होने लगते हैं । अर्थात् शरीर के अवयवों को रक्त के कम मिलने से स्वल्प व्यायाम से भी थकावट और अशक्ति अनुभव होती है । वृक्कों को रक्त कम मिलने से श्वयथु कालक्षण प्रकट हो जाता है । दक्षिण हृदय के पीछे की ओर शिराओं में रक्त के रुकने से अनेक लक्षण होने लगते हैं । शिर की शिराओं में रक्त के रुक जाने से शिर दर्द रहना, मस्तिष्क की विचार शक्ति, निद्रा करने की शक्ति तथा उसकी सहज शान्ति कम हो जाती है अर्थात् वह कुछ उन्निद्र, बेचैन, और कुछ मस्तिष्क सम्बन्धी मन्दता अनुभव करता है । पुफ्फुस की शिराओं में रक्त के रुकने से खांसी व श्वास कृच्छ्रता के लक्षण होते हैं । कोष्ठ की शिराओं में रक्त के रुकने से दुग्धानाश, अन्न के लिये अरुचि, भोजन बाद पेट में भारीपन लगने लगता है । रक्त में कार्बनडाईऑक्साईड गैस की वृद्धि होते जाने से तन्द्रालुता और कुछ मूर्छा के लक्षण भी होते हैं ।

परीक्षा करने पर Jugular Veins में धमन, यकृद्वृद्धि तथा उस पर स्पर्शाक्षमता, पाद श्वयथु, हृदय व नाड़ी में निर्बलता के लक्षण मिलते हैं । हृदय दक्षिण की ओर ज़ार बढ़ा होता है जिसका पता टकोर की मन्दता से लगता है । हृदय का शब्द Pulmonary Area पर ऊंचा सुनता है । दक्षिण पुफ्फुसावरण कोष में जल के उत्पन्न हो जाने के लक्षण भी हो सकते हैं ।

चिकित्सा :-

यह रोग कास श्वास के उपद्रव रूप में होता है अत: इसकी चिकित्सा तत्परता के साथ होनी चाहिये । हर प्रकार के धुंए व धूल वाले वायु मण्डल से बचना चाहिये । खुली हवा में भ्रमण तथा मृदु व्यायाम नित्य करना चाहिये । रात को भी जहां तक हो सके, खुले में जहां शुद्ध वायु का प्रवेश हो, सोना चाहिये । गर्म जल पीना चाहिये । गर्म दुग्ध-फलरस-विटामिन्स का सेवन करना चाहिये । शरीर भारी हो तो भोजन में केलोरीज की मात्रा कम कर देनी चाहिये । भोजन प्रात: ८, दो- १२ व सांयकाल ४ बजे परिमित मात्रा में देना चाहिये । बाद में ...

फैट का सेवन बन्द कर देना चाहिये

Bronchospasm या श्वासनली स्तम्भ के शान्त करने के लिये
पहले से किसी Steroid औषधि का प्रयोग भी करना चाहिए

Diaphragmatic breathing पर ध्यान देना
चाहिए.

निराहार ही रहना चाहिये।

श्वास नालियों में विद्यमान जीवाणु संक्रमण को दूर करने के लिये Penicillin व Streptomycin दोनों का मांस द्वारा एक सप्ताह तक प्रयोग करना चाहिये। अथवा Aerosoltherapy से इनका प्रयोग करना चाहिये। Nebulizer (Vaponephrine, D-Vilbiss) के द्वारा Penicillin ५० हजार यूनिट को या Streptomycin ·२५ ग्राम को १-२ सी०सी० जल में मिला के इनके छींटें श्वास द्वारा श्वास नालियों में देने चाहियें।

श्वास का वेग हो तो Epinephrine Inhalalion (१०० में १) $\frac{1}{2}$ सी०सी० या Isuprel (१०० में १) ·१-·५ सी०सी० के छींटें भी Nebulizer के द्वारा सांस से दिये जा सकते हैं। मुख द्वारा Choline Theophylline (Choledyl-Kolinate या) २०० मिलि० की गोली के रात को देने से या शिरा द्वारा Aminophylline ·२५ ग्राम मात्रा में देने या Ephedrine (Bronchodilator) $\frac{1}{2}$ ग्रेन के मुख द्वारा देने तीन बार देने से भी श्वास नालियों में उत्पन्न संकोच शान्त हो जाता है।

श्वास नालियों में संचित हुए बलगम को निकालने के लिये Sodium Bicarbonate १० ग्रेन, Sodium Chloride ३ ग्रेन, Spirit Chloroform ५ बुन्द, Aqua Anethidest. १ औंस, ऐसी एक मात्रा को सबेरे शाम लेके ऊपर गर्म जल का एक कप पी लेना चाहिये। श्वास की शान्ति के लिये इसी मिश्रण में २-३ ग्रेन Pot. Iod. मिला सकते हैं। यदि खांसी गीली न हो के सूकी हो तो उसकी शान्ति के लिये Syrup Codeine Phosphate १ ड्राम की एक मात्रा रात को दे सकते हैं।

पेट पर कस कर पेटी बान्धने या कपड़ा बांधने से Diaphragm को सहारा मिल जाता है जिससे फिर श्वास जल्दी नहीं चढ़ता, रोगी को चाहिये कि वह फुफुस कोष्ठकों में संचित हुई हवा को बाहर निकालने के लिये चटाई पर, पीठ के भार लेट कर, पहले अन्त:श्वास ले, फिर दोनों हथेलियों से दोनों और निचली पसलियों को अन्दर और ऊपर की ओर दबायें तथा बहि:श्वास लेकर अन्दर की हवा को मुख से बाहर फेंकें। एक समय में ऐसा १०-१५ बार करना चाहिये तथा दिन में २-३ बार इसी प्राणायाम को दुहराना चाहिये। इस प्राणायाम से जिसमें अन्त:श्वास पर नहीं, पर बहि:श्वास पर विशेष बल दिया जाता हो, इस रोग में लाभ होता है। पेट की मांस पेशियों पर मालिश करके उन्हें बलवान बनाने का यत्न करना चाहिये

आक्सिजन के २०-३० मिनट के लिये दिन में तीन बार प्रयोग करने से भी रोगी की श्वास कृच्छ्रता में आराम आ जाता है।

दक्षिण हृदय नैर्बल्य की चिकित्सा :-

Penicillin, Tetracycline आदि उपयुक्त औषधियों के साथ साथ Isoprenaline(Neoepinine) ५-१० मिलि० मात्रा में दिन में तीन बार जीभ के नीचे रखने से श्वास नालियों का स्रोत खुल जाता है। (Bronchodilatation होता) मुख से Ephedrine ३० मिलि० मात्रा में दिन में दो बार देवें, हृदय की निर्बलता के लिये तथा श्वास नालियों के संकोच को दूर करने के लिये Aminophylline १००-५०० मिलि० मात्रा में दिन में तीन बार बार या Choline Theophyllinate (Choledyl) २०० मिलि० मात्रा में दिन में तीन चार बार दें। तथा इसे पर्याप्त समय तक जारी रखें। इनके अतिरिक्त आक्सिजन का प्रयोग आवश्यक होता है। श्वयथु के लिये Mersalyl, Hydrochlorothiazide (Dichlortride) २५-५० मिलि० का प्रयोग करना चाहिये। भोजन में लवण नहीं होना चाहिये। इस रोगी में आक्सिजन का प्रयोग स्वल्प मात्रा में ही करना चाहिये। उसे निद्रा जनक औषधियाँ भी नहीं देनी चाहियें क्योंकि उनसे श्वास केन्द्र और अधिक मन्द हो सकता है।

आयुर्वेदानुसार :-

पुफुस में वात कफ वृद्धि से उत्पन्न होने वाला यह ऊर्ध्व श्वास है जिसमें वात वृद्धि के लक्षण विशेष होते हैं। अत: रोगी की वात, कफ शामक, उष्ण बल्य चिकित्सा होनी चाहिये। दशमूल घृत (चरक। चि०। कास रोग) दशमूलारिष्ट, अगस्त्य हरीतकी, श्वास चिन्तामणि आदि में से किसी के प्रयोग से रोग बढ़ता नहीं है।

जीर्णपुफुस-जराकास-जराश्वास :- Pulmonary Fibrosis, Chronic-Interstitial Fibrosis of the Lungs.

३०-४० वर्ष की आयु के हो जाने पर स्वभाव पुफुसों में कुछ कुछ लघुतायुक्त जीर्णता (Atrophic Fibrosis) के चिन्ह प्रकट होने लगते हैं, जिससे उनकी Vital Capacity या अधिक से अधि हवा को बाहर फेंकने की शक्ति, तथा Breathing Capacity अर्थात् ए मिनट में जितनी हवा श्वास प्रश्वास में ली जाती या छोड़ी जाती है उस मात्रा तथा Maximum Diffusion Capacity अर्थात् पुफुस के रक्त की वा में से अधिक से अधिक आक्सिजन को ले लेने की शक्ति ये सब कुछ न कुछ

जाती हैं जिससे बड़ी आयु में रक्त के अन्दर आक्सिजन की प्रतिशतक मात्रा ६३ प्र०श० ही रह जाती है जबकि छोटी आयु में वह ६६ प्र०श० होती है।

परन्तु जीर्ण कास रोग (Ch.Bronchitis) में जब श्वास नालियों में चिरस्थायी रूप में शोथ रहता है उनकी दीवारों में ही स्नायुतन्तु की वृद्धि नहीं पर समीप समीप के अवयवों में भी स्नायुतन्तु की वृद्धि (Peribronchial Fibrosis) होकर फुफुस की ओर प्रसरण करने लगती है।

छोटी छोटी श्वास नालिकाओं में शोथ के रहने से उनके स्रोत में अवरोध उत्पन्न हो जाने (Bronchiolitis obliterans) से उनसे सम्बन्धित वायु कोष्ठक (Alveoli) भी भिंच जाते हैं, और उनमें भी स्नायुतन्तु की वृद्धि हो जाती है। इस प्रकार जीर्ण कास रोग इसका एक प्रधान कारण है।

इसी प्रकार वाम हृदय (Left Ventricle) के निर्बल होने पर जब फुफुस के श्वास कोष्ठकों में विद्यमान सूक्ष्म रक्तवाहिनियों में रुधिर अधिक मात्रा में रुकता रहता है तब श्वास कोष्ठकों की दीवारें सम्भवत: श्वयथु (Oedema) के कारण स्थूल (Fibrotic) हो जाती हैं और इन रक्तवाहिनियों की दीवारें भी कुछ कठोर हो जाती हैं। (Pulmonary Arteriosclerosis).

कभी कभी बालकों में रोमान्तिका (Measles) या संक्रामक कास (Whooping Cough) के कारण हुआ तीव्र फुफुस ज्वर (Bronchopneumonia) पूर्णतया जैसे ठीक हो जाना चाहिये वैसे ठीक नहीं होता प्रत्युत वायु कोष्ठकों में संचित श्लेष्म द्रव (Exudate) में नई रक्तवाहिनियां तथा स्नायुतन्तु (Connective Tissue) के सैल आ जाते हैं जिससे वहां स्नायुतन्तु (Fibrosis Tissue) बन जाता है और फुफुस का वह प्रदेश कठोर सा हो जाता है। इसी प्रकार बालकों बाल्यावस्था में ही फुफुस के एक खण्ड में स्नायुभाव हो जाता है जिसके अन्दर विद्यमान श्वास नालियों में शोथ के रहने से खांसी का लक्षण वर्षों तक बना रहता है। फिर इस कठोर फुफुस में श्वास नालि शैथिल्य (Bronchiectasis) का उपद्रव भी हो जाता है।

एक व्यापक फुफुस स्नायुभाव Diffuse Fibrosis of the Lungs. का रोगी भी पाया गया है जिसे Hammon and Rich (१६४४) का रोग भी कहा जाता है जिसके कारण के विषय में अभी तक कोई निश्चय नहीं हो पाया पर Autoimmunity को उसका कारण जाता है इसमें दोनों फुफुसों के वायु कोष्ठकों में व्यापक स्नायुभाव पाया जाता है।

कभी कभी क्षय रोग से ग्रस्त पुफुस के एक भाग में स्नायुतन्तु के आ जाने से वह एक कठोर से अवयव (Fibrocaseous Mass) में परिवर्तित हो जाता है । हो सकता है कि रक्त में से Calcium Phosphate के निक्षिप्त हो जाने से यह और भी कठोर हो जाय । इस प्रकार क्षय रोग के कारण भी पुफुस में स्नायुभाव (Fibroid T.B.) हो सकता है ।

इन व्यापक स्नायुभावों के अतिरिक्त पुफुस में स्थानिक स्नायुभाव भी होता है जिसके प्रधान कारण स्थानिक क्षयरोग, पुफुस विद्रधि (Abscess of the Lung) श्वास नाली शैथिल्य (Bronchiectosis) , पुफुस कैन्सर और चि०पार्श्वशूल (Chronic Pleurisy) के रोग होते हैं । क्षय रोग जनित स्नायुभाव पुफुस के ऊर्ध्वभाग में होता है । [illegible] शेष स्नायुभाव पुफुस के निम्न भाग में होते हैं । पुफुसावरण में शोथ के कारण हुआ स्नायुभाव प्राय: क्षय रोग जनित होता तथा पुफुस के किनारों से आरम्भ होकर ~~ब~~ अन्दर की ओर प्रसरण करता है । श्वास कृच्छ्रता के लक्षण के अतिरिक्त समय समय पर खांसी के होने व बलगम के गिरने के लक्षण भी होते हैं । तापमान की वृद्धि का लक्षण प्राय: नहीं होता ।

पुफुस में स्नायुभाव का कारण क्षय रोग हो या श्वासनाली शैथिल्य (Bronchiectosis) हो या कैन्सर हो या चिरस्थायी विद्रधि हो तो उस उस रोग के लक्षण भी होते हैं ।

परीक्षा :-

परीक्षा करने पर श्वास गति तीव्र पाई जाती है पुफुस के ग्रस्त प्रदेश पर छाती दबी हुई दिखाई पड़ती है । रोग व्यापक हो तो एक ओर या दोनों ओर छाती दबी होती है । उधर का कन्धा भी कुछ गिरा होता है, श्वास प्रश्वास के साथ उधर की छाती स्वस्थ छाती की अपेक्षा कम हिलती या कम फूलती है , उधर की छाती पर टकोर ध्वनि, स्वस्थ छाती की अपेक्षा (जिसमें Emphysema के कारण अधिक वायु रुकी हो सकती है) मन्द होती है । ऊपर की श्वासनालियों (Hilum) पर श्वास प्रश्वास ध्वनि ऊंची (Bronchial या Tubular) सुनाई पड़ती है । नीचे बुलबुलों की सी ध्वनि (Rales) सुनाई पड़ सकती है, रोग ग्रस्त पुफुस पर श्वास प्रश्वास ध्वनि निर्बल सुनाई पड़ती है । जीर्ण कास के कारण सीटियों की आवाज (Rhonchi) दोनों ओर सुनाई पड़ सकती हैं । मुख में बोला हुआ शब्द भी रोग ग्रस्त पुफुस पर सुनाई नहीं पड़ता । जिधर की छाती दबी होती है, हृदय उधर की ओर खिसक जाता

है । जिससे हृदय के कारण होने वाला कम्पन अधिक दांई और को या
अधिक बांई ओर को खिसका हुआ दिखाई पड़ता है । नाड़ी गति तीव्र
होती है । पुफुसों में रक्तभार के बढ़ने से तथा दक्षिण क्षेपक (Right-
Ventricle) के आकार में बड़ा हो जाने से पुफुस प्रदेश(Pulmonary-
Area)पर हृदय का द्वितिय शब्द ऊंचा सुनाई पड़ता है । रोगी की अंगुलियों
के सिरे मोटे (Clubbing) दीखते हैं । आक्सिजन की न्यूनता के कारण
चेहरे पर नीलापन भी ~~झलक~~ झलकता है, विशेषत: जब रोग अधिक बढ़
जाता है । देखने में रोगी बड़ा कृश दीखता है । X-Ray परीक्षा करने पर
दोनों फेफड़ों में व्यापक बदलियां छाई हुई दीखती हैं ।

लक्षण :-

पुफुस के वायु कोष्ठकों की दीवारों के स्थूल
हो जाने से उनमें विद्यमान सूक्ष्म पुफुस धमनियों (Pulmonary Capilla-
ries) की भी दीवारें स्थूल हो जाती हैं जिससे कोष्ठकों में विद्यमान
आक्सिजन का रक्तवाहिनियों में विद्यमान रक्त के अन्दर प्रवेश(Perfusion)
उस सुगमता से नहीं होता जैसा स्वस्थ पुफुस में होता है । इस कारण
Alveolar Arterial Oxygen Gradient जो साधारणत: (१०३.५
M.M.Hg. कोष्ठकों की हवा का ६४.२ M.M.Hg. धमनियों के रक्त का)
९.३ M.M.Hg. होता है, इसरोग में बढ़ जाता है । रोगी जब विश्राम कर
रहा होता है तब तो इतनी आक्सिजन भी उसे पर्याप्त हो जाती है परन्तु
जोर से चलने या ऊपर चढ़ने या तीव्र श्रम करने पर आक्सिजन की आवश्यक
मात्रा के न मिलने से अर्थात् जब रक्त में आक्सिजन की समाई(Saturation)
८०-९० प्र०श० रह जाती है तब रोगी हांफ जाता है । दूसरे शब्दों में
वायु कोष्ठकों और रक्त के बीच में स्नायुभाव की जो दीवार (Alveolo-
capillary Block) खड़ी हो गई है उसके कारण आक्सिजन के पर्याप्त
मात्रा में न मिलने से रोगी को शीघ्र शीघ्र श्वास लेने पड़ते हैं । इस प्रकार
श्वास कृच्छ्रता (Tachypnoea या Hyperpnoea) अर्थात् श्वास
गति की तीव्रता या उथले उथले तीव्र श्वास लेने का लक्षण प्रकट हो जाता
है । पहले तो श्रम करने से ही श्वास कृच्छ्रता होती है पर रोग के बढ़ जाने
पर बैठे बैठे भी रोगी को श्वास चढ़ा रहता है । खांसी होने पर श्वासकृच्छ्र
-ता और बढ़ जाती है । लेटने मात्र से जैसे कि वाम हृदय दौर्बल्य(Left He-
art Failure) में श्वास गति तीव्र हो जाती है वैसे इस रोग में नहीं
होती । मध्यमायु के बाद की आयु में जब क्रमश: श्वास कृच्छ्रता के बढ़ते जाने
का लक्षण हो, पहले पुरानी खांसी या श्वास रोग का इतिवृत्त भी हो तो
पुफुस में स्नायुभाव या पुफुस जरा रोग का सन्देह करना चाहिये । जितना
श्वास काठिन्य अधिक हो, उतना ही पुफुस में स्नायुभाव अधिक समझना

चाहिये।

भेदक लक्षण :-

उरःक्षय जनित स्नायुभाव हो तो Radiography के द्वारा छाया पुफुस-शिखर में मिलती है। अन्यरोगों के कारण उत्पन्न छाया पुफुस के निम्न भाग में मिलती है। केन्सर के कारण Mediastinum की ग्रन्थियों के सूज जाने से Hilum या पुफुस मूल में छाया आरम्भ होकर पुफुस की ओर फैलती है। उसकी थूक की परीक्षा करने से उसमें केन्सर सेल मिलते हैं। प्रारम्भिक केन्सर श्वास नालियों या आमाशय में होता हैं।

छाती अन्दर को दबी हुई हो, हृदय एक ओर को खिसका हुआ हो तो पुफुस स्नायुभाव का सन्देह कर लेना चाहिये।

~~Broncho-Pneumonia~~ कुछ एक वर्षों तक रुग्ण रहने के बाद अन्त में रक्त को आक्सिजन के कम मिलने से या पुफुसों में Bronchopneumonia का आक्रमण हो जाने से या दक्षिण हृदय के सामने रुकावट के बढ़ जाने एवं उसके आकार में बड़े हो कर अन्त में फेल हो जाने से मृत्यु होती है।

चिकित्सा :-

इस रोग की निवारक चिकित्सा कोई नहीं। रोग के प्रारम्भ में धुआं तथा धूल से बचा जाय और खांसी, Pneumonia आदि के होने के बाद प्राणायाम सम्बन्धी व्यायाम नियम से किया जाय तो पुफुस में स्नायुभाव की वृद्धि को रोका जा सकता है। फिर ज्वर या खांसी का संक्रमण होने पर उचित Antibiotic औषधि का प्रयोग करना चाहिये। पर इनके देने से स्नायुभाव पर कोई प्रभाव नहीं होता। उरःक्षय रोग के कारण हो तो तदनुसार औषधि का प्रयोग करना चाहिये। Cortisone तथा दूसरे Corticosteroids के पहले बड़ी और फिर न्यून मात्रा में कुछ मास तक देने से (Cortisone ५०-१०० मिलि० दैनिक) लाभ हो सकता है। अन्तिम अवस्था में पुफुस की असमर्थता को पूरा करने के लिये आक्सिजन का प्रयोग आवश्यक हो जाता है। दक्षिण हृदय की निर्बलता की पूर्ति के लिये मूत्रल औषधियों का इंजेक्शन तथा भोजन में लवण की मात्रा को कम कर देना भी आवश्यक है।

रक्त रोग :- Diseases of the Blood.

रक्त रचना :-

शरीर में रक्त शरीर का आठवां-नौवां या दसवां भाग या औसतन ६ सेर या ६ लिटर के लगभग होता है । १.. पुफुसों में से यह अपने हिमोग्लोविन के द्वारा आक्सिजन को अवयवों तक पहुंचाता है तथा वहां से कार्वोनिक एसिड गैस को लेकर पुफुसों तक पहुंचाता है । २.. आंतों में से आहार रस को लेकर उसे अवयवों तक पहुंचाता है । अवयवों में उत्पन्न मलों को लेकर त्वचा तथा वृक्कों तक पहुँचाता है । ३.. नि:स्रोतस ग्रन्थियों (Ductless Glands) के रसों (Hormones) को शरीर के अवयवों तक पहुंचाता है । शरीर में ऊष्मा की उत्पत्ति करके उसे शरीर में प्रसारित करता है । ऊष्मा बढ़ जाय तो इसे बाहर भी करता है । रक्त में आधे के या ३ लिटर के लगभग (Plasma) और आधे के लगभग दाने (Corpuscles) होते हैं जो रक्त के गतिशिल रहने के कारण उसमें घुले मिले रहते हैं । इन दानों में से अधिकतर रक्त कण (Red Cell) होते हैं । इनके अतिरिक्त श्वेत कण (Leucocytes) तथा चक्रकण (Thrombocytes या Platelets) भी होते हैं । ये तीनों कण रक्त वर्ण मज्जा में जो चपटी अस्थियों (कसेरुकास्थि, उरोस्थि, पसली, कपालास्थि आदि) में होती है उत्पन्न होते हैं । पाण्डु रोग में जब रक्त में आक्सिजन की न्यूनता हो जाती है, मज्जा में रक्त कणों का निर्माण अधिक होने लगता है । रक्त में विद्यमान Haemopoietin नामक Hormone के ऐसी अवस्था में बढ़ जाने से मज्जा में ऐसा प्रभाव होता है कि उनकी उत्पत्ति अधिक होने लगती है । जीवाणु संक्रमण के होने पर मज्जा में श्वेत कणों की उत्पत्ति बढ़ जाती है । श्वेत कणों में से दाने दार कणों (Granulocytes) की उत्पत्ति ही मज्जा में होती है । Lymphocytes लसीका ग्रन्थियों तथा लसीका मय प्रदेश में उत्पन्न होते हैं । Monocytes नामक श्वेत कण यकृत प्लीहा आदि के Reticul-oendothelial सेलों से उत्पन्न होते हैं । श्वेत कण रक्त के प्रति क्यूविक मिलि० मीटर में ६ हजार के लगभग होते हैं । जिनमें से दानेदार कणों (Granulocyles) में से Polymorphonuclear ६० प्र०श०, Eosinophils २ प्र०श० के लगभग होते हैं । Lymphocytes छोटे २०, बड़े १० प्र०श० के लगभग होते हैं । बड़े Mononuclears ५ प्र०श० के लगभग होते हैं ।

प्लाज्मा :- Plasma:-

क्षारीय प्रतिक्रिया का हल्के से पीले रंग का १०५० के

के लगभग भार का द्रव है जिसके १०० सी०सी० में ६$\frac{1}{2}$ ग्राम प्रोटीन्स होते हैं। जिनमें से Albumin ४, ग्राम होता है। यह पदार्थ सिराओं (Capillaries) में से बाहर नहीं होता। अत: इस के कारण रक्त में एक दबाव (Colloid Osmotic Pressure) रहता है। एवं रक्त के इस भार के कारण अवयवों में संचित हुआ द्रव शिराओं (Veins) की तरफ खिचकर रक्त में आ जाता है। प्लाज़्मा में Globulin २ ग्राम प्र०श० होता है। इसमें viruses, Exotoxins, वाह्यप्रोटीन्स, तथा बैक्टीरिया के विपरीत Anti Bodies रहते हैं जिनके कारण रक्त में प्रतिरोधक शक्ति (Immunity) रहती है। Fibrinogen नामक प्रोटीन जो Globulin है, आधी ग्राम से कुछ कम मात्रा में होता है। जब कोई सिरा फट जाती है तब रक्त का Thrombin नामक Enzyme इसको Fibrin में बदल देता है जिससे सिरा में उत्पन्न हुआ छिद्र भर दिया जाता है। इस प्रकार यह प्रोटीन सिराओं की मरम्मत का कार्य करता है। जब शरीर में कहीं पर शोथ (Inflammation) होता है तब वहां रक्त में से ये प्रोटीन बाहर निकल कर उस अवयव की रक्षा तथा रोहण का कार्य भी करते हैं।

रक्त कण :-(Red Cells)

एक रक्त कण दोनों ओर न-तोदर चक्रिकाकार होता है ताकि गैसें प्लाजमा में से इसमें सुगमता से आ जा सकें तथा स्लाइड पर देखने पर ७.२ माईक्रोन व्यास का होता है। इसका खोल या स्पंज Cholesterol, Lecithin तथा Nucleoprotein का बना हुआ होता तथा इसके अन्दर एक अर्धां द्रव पदार्थ Haemoglobin भरा होता है। जिसके कारण यह कण लालरंग का दीखता है। रक्त कणों के बाह्य भाग में स्नेहांश के होने से उसमें Negative चार्ज रहता है सभी कणों के ऐसा होने से वे कभी भी एक दूसरे से टकराते नहीं। एक क्यूबिक मिलिमीटर रक्त में ५०,५०$\frac{1}{2}$ लाख, (५,५$\frac{1}{2}$ मिलियन) रक्तकण होते हैं।

Packed Cell Volume (P.C.V.) तथा Mean Corpuscular Volume (M.C.V.):-

एक रक्तकण का क्षेत्रफल कितना है, यह Haematocrit नामक एक ११ सेन्टीमीटर लम्बी २$\frac{1}{2}$ मिलीमीटर चौड़ी शीशे की नली के द्वारा जाना जाता है। इसमें इसके १०० नम्बर के चिन्ह तक Potassium और Ammonium Oxalate के साथ या Heparin के साथ मिश्रित किया हुआ रक्त भर दिया जाता है फिर इसे उतनी देर तक Centrifuge किया जाता है कि जिसके बाद लाल दानों (Red Cells) का केवल आगे गिरना बन्द हो जाता है। सामान्यत: रक्तकणों का यह

लेवल या सैलों के ढेर का लेवल ४६ सी०सी० के चिन्ह तक होता है। इस संख्या को Packed Cell Volume कहते हैं। अब इस हिसाब से १००० सी० सी० रक्त में जितने सी०सी० रक्त कण हों उसे प्रति क्युबिक मिलीमीटर रक्त में जितने मिलियन रक्तकण हों उस संख्या के द्वारा भाग दे देने से एक सैल का दौत्रफल आ जाता है अर्थात् Volume of Packed Cells in C.C.per 1000 c.c.of Blood/Red Cells in Millions per cu.m. m.=mean Corpuscular Volume. (mcv) अर्थात् ४६ सी०सी० (Cell Volume) X१०/ ५.५/२ = ८४ इस प्रकार प्रत्येक रक्तकण का दौत्रफल ८४ Cubic Micron होता है। जब शरीर में रक्तकणों का दौत्रफल इससे बढ़ जाता है। उदाहरणत: ९०-९४ हो जाता है तब उसे बड़ा कण (Macrocyte) कहा जाता है। यदि उसका दौत्रफल ७८ Cubic Micron से कम होजाता है तब उसे छोटा कण (Microcyte) कहते हैं। साधारण दौत्रफल के रक्तकण को साधारण कण (Normocyte) कहते हैं। रक्तकण के दौत्रफल के बढ़ जाने पर भी उसमें हिमोग्लोबिन की मात्रा साधारण ही रहती है। इसलिये उसे Macrocytic Hypochromic या Normochromic Anaemia कहते हैं।

Haemoglobin:- एक Lipoprotein है जो एक रंग से युक्त द्रव्य Haematin (लोह युक्त Porphyrin) तथा Globin नामक प्रोटीन के मिलने से बना है। इसमें १/२ प्रतिशतक लोह रहता है अर्थात् १ ग्राम हीमोग्लोबिन में ३.३ मिलिग्राम लोह होता है। शरीर में कुल मिलाकर ४.५ ग्राम लोहा होता है (जो कि स्वस्थ शरीर में उपलब्ध रहता है) जिसमें से ७३ प्र०श० हीमोग्लोबिन में तथा २३.५ प्र०श० मृत हुये रक्तकणों से मुक्त हुवा २ (यकृत्, प्लीहा, मज्जा) Reticuloendothelial Cells में मिलता है जहां से यह एक Organic Iron (Ferritin) के रूप में रक्त के द्वारा मज्जा (Marrow) यकृत तथा प्लीहा में संचित होता तथा नये रक्त कणों की उत्पत्ति में (erythropoiesis में) खर्च होता है। ३.३ (प्र०श०) लोहा मांस के Myoglobin (रक्त के O2 को मांसपेशियों में लेने के लिये) में .२ प्र०श० Enzymes (Cytochrome, Catalase Peroxidase) में मिलता है। स्पष्ट है कि यदि पत्र शाक, फल, गेहूं के आटे (अण्डे) तथा दालों के द्वारा लोहा शरीर में न आये तथा प्रोटीन्स भी शरीर को कम मिलें तो हीमोग्लोबिन की मात्रा शरीरमेंकम हो जाती है। इसके आक्सिजन का (आक्सीजन) वाहक होने से पांडु रोग में अवयवों को आक्सिजन कम मिलती है। प्रतिदिन Haemoglobin के टूटने से २७-२८ मिलिग्राम लोहांश मुक्त होता है। इसमें से एक या १.२ मिलिग्राम (अर्थात् बहुत थोड़ा अंश) तो पुरीष-स्वेद-त्वचा और लोम के उतरने वाले छिलकों के द्वारा शरीर से बाहर निकल जाता है।

शेष नये Haemoglobin के निर्माण में काम आ जाता है। अत: भोजन से प्रतिदिन १ मिलि० लोहे की पूर्ति करना आवश्यक होता है। स्त्रियों में आर्तव के होते रहने के कारण प्रतिदिन २ मिलि० के हिसाब से लोहा शरीर से निकल जाता है। अत: उन्हें पुरुषों से दुगुने लोहे की प्रतिदिन आवश्यकता होती है। गर्भिणी में गर्भस्थ शिशु को प्रतिदिन २.७ मिलिग्राम के हिसाब से लोहे की आवश्यकता रहती है। अत: आर्तव के न होने पर भी गर्भिणी को प्रतिदिन २.७ मिलिग्राम लोहे की आवश्यकता रहती है।

भोजन का लोहांश आंत में पहुंचकर पहले Ferrous Oxide बनता है फिर Ferric Oxide बनके एक प्रोटीन से मिलकर Ferritin के रूप में श्लेष्म कला के सैलों में से विलीन होता है। वहां फिर Ferrous Oxide बन के Portal Vein की सूक्ष्म सिराओं में प्रवेश करता है। फिर लोहे को बांधने वाले एक प्रोटीन के साथ बंधकर Transferrin के रूप में यह मज्जा में या लोहे के कोष स्थानों में जाता है। आंतों में Ascorbic Acid इसके विलयन में सहायक होता है। दूसरी ओर वहां Phosphates और Phytates में जो लोहा रहता है वह विलयन शील नहीं होता अर्थात् ये दोनों लोहे के विलियन में बाधक होते हैं। यह भी देखा गया है कि यदि शरीर में लोहे की कमी न हो तो शरीर से जितना लोहा प्रतिदिन निकलता है उतना ही विलीन होता है। परन्तु यदि शरीर में लोहे का भण्डार घटा हुआ होतो भोजन में से लोहांश अधिक मात्रा में विलीन होने लगता है।

हीमोग्लोबिन की मात्रा :-

Haldane के तरीके से जब रक्त के १०० सी०सी० में १४.८ ग्राम हीमोग्लोबिन होता है तब उसे १०० प्रतिशतक कहा जाता है। Sahli के तरीके से जब वह १०० सी०सी० में १७.३ ग्राम होता है तब उसे १०० प्रतिशतक कहा जाता है। इन दोनों की औसत निकालते हुये १४½ ग्राम को १०० प्रतिशतक कह दिया जाता है (लगभग १५ ग्राम।१०० सी० सी० रक्त) इस प्रकार का १०० सी०सी० रक्त १९.४ सी०सी० आक्सिजन का वाहक होता है। इसलिये जितना हीमोग्लोबिन की मात्रा कम होती है उतना उतना ही शरीर को आक्सिजन कम मिलती है।

Colour Index:-

हीमोग्लोबिन तथा रक्त कणों की प्रतिशतकता के अनुपात को Colour Index कहते हैं। अर्थात् साधारणत: जब १०० सी०

सी० रक्त में १४$\frac{1}{2}$ ग्राम हिमोग्लोबिन हो और रक्त के प्रति क्युबिक मिली-मीटर में ५ मिलियन रक्तकण हों तो Colour Index = हीमोग्लोबिन प्रतिशतक रक्तकण प्रतिशतक =१००।१०० =१.होता है। जब रक्त स्राव होकर हिमोग्लोबिन तो विशेष घट जाय और रक्तकण विशेष न घटें तो यह १ संख्या से कम हो जाता है। जब तीव्र पांडु(Pernicious Anaemia)या मज्जा के रुग्ण होने के कारण रक्तकणों की मात्रा तो विशेष कम हो जाय हीमोग्लोबिन उतना न घटे तो यह संख्या १ से अधिक होती है। उदाहरणतया यदि हीमोग्लोबिन २५ प्रतिशतक रह गया है और रक्तकण घटकर २० प्रतिशतक रह गये हैं तो Colour Index = २५/२० = १.२५ समझना चाहिये। इसका अभिप्राय यह भी है कि औसतन प्रत्येक सेल का व्यास ७.२ माईक्रोन से अधिक हो गया है। इसलिये ऐसे पाण्डु रोग को Macrocytic Anaemia कहते हैं। यदि Haemoglobinometer से पता लगे कि रक्त में हिमोग्लोबिन ५० प्रतिशतक रह गया है, रक्तकणों में कोई विशेष न्यूनता नहीं हुई तो Colour Index ५०/१०० =.५ है। अब यदि रक्तकण सामान्य आकार के हों तो उसे Normocytic Hypochromic Anaemia कहते हैं। यदि रक्त कण छोटे आकार के हों तो उसे Microcytic Hypochromic Anaemia कहते हैं। साधारणतः जब हिमोग्लोबिन ७५ प्रतिशतक से कम हो जाता है, पाण्डु रोग के लक्षण प्रकट होने लग जाते हैं।

Mean Corpuscular Haemoglobin (M.C.H.):-

प्रत्येक रक्तकण में औसतन कितनी मात्रा हीमोग्लोबिन की है, यह जानने के लिये १०० सी०सी० रक्त में विद्यमान हिमोग्लोबिन की मात्रा के हिसाब से १००० सी०सी० में जो मात्रा निकले उसे रक्त के एक क्यूबिक मिलिमिटर में विद्यमान रक्त कणों की संख्या से भाग दे दिया जाता है अर्थात् उतने माइक्रो ग्राम हिमोग्लोबिन प्रत्येक रक्त कण में होता है। इस प्रकार स्वस्थावस्था में यह संख्या १०० सी०सी० रक्त में हीमोग्लोबिन x १०/ रक्तकणों की संख्या मिलियन्स में =१४$\frac{1}{2}$x१०/५ = २९ माइक्रो ग्राम हीमोग्लोबिन प्रत्येक रक्तकण में होता है। यह संख्या रक्तकण के रंग(Chromicity) का मापक है। अर्थात् इस संख्या के अनुसार पाण्डु (Anaemia) को Hypochromic या Hyperchromic कहा जाता है।

Mean Corpuscular Haemoglobin Concentration(M.C.H.C.):-

प्रत्येक रक्तकण में हीमोग्लोबिन की औसतन प्रतिशतक मात्रा कितनी है यह जानने के लिये १०० सी०सी० रक्त में विद्यमान

हिमोग्लोबिन की मात्रा को १०० की संख्या से गुणा करके प्राप्त संख्या को (Packed) Cell Volume की संख्या अर्थात् १०० सी०सी० रक्त में ठोस हो गये रक्त कणों के क्षेत्रफल की सूचक संख्या से भाग दे देना चाहिये। साधारणत: यह संख्या = हिमोग्लोबिन प्रति १०० सी०सी० x १०० /Cell Volume = $१४\frac{१}{२}$ x १००/४६ = लगभग ३२ (पृ. २१) अर्थात् साधारणत: रक्त कण का ३२ प्रतिशतक भाग हीमोग्लोबिन से बना हुआ है। लोहे की अथवा हीमोग्लोबिन की कमी से उत्पन्न पाण्डुरोग में यह संख्या घटी हुई होती है। ज्यों ज्यों रोगी अच्छा होता जाता है यह संख्या क्रमश: बढ़ती जाती है। पाण्डु रोग में कभी कभी M.C.H. की संख्या नार्मल से अधिक भी हो सकती है। परन्तु M.C.H.C. की संख्या कभी भी नार्मल से अधिक नहीं हो सकती। क्योंकि यह रक्तकण के हीमोग्लोबिन के द्वारा पूर्ण (Saturated) होने को सूचित करती है और पाण्डुरोग में रक्त कण रंग से पूर्ण Normosaturated तो हो सकते हैं, अधिक रंग वाले (Over Saturated) हो ही नहीं सकते। इस संख्या के कम होने को Hyposaturation कहा जाता है। यह Saturation की कमी लोहे से पूर्ण होती है।

रक्त कणों का नाश तथा उत्पत्ति :- रक्तकण की आयु लगभग चार मास होती है। अतएव लगभग .८३ प्रतिशतक रक्तकण तथा लगभग ७ ग्राम हीमोग्लोबिन प्रतिदिन नष्ट होते रहते हैं तथा इतने ही कणों और हीमोग्लोबिन की प्रतिदिन उत्पत्ति भी होती है। जिस कार्य के लिये भोजन में प्रोटीन तथा स्वल्प लोह युक्त भोजन जैसे पत्र शाक, गेहूं के आटे, फल आदि की आवश्यकता रहती है। साधारणत: तो रक्तकणों के टूटने से जो प्रोटीन युक्त होता है + वह शरीर में काम आ जाता है, जो Porphyrin युक्त होता है उससे Plasma Bilirubin बनता है, जो लोहायुक्त होता है + वह नये रक्तकणों के निर्माण के लिये पर्याप्त होता है। पर यदि आर्तव अधिक हो, अर्शरोग आदि से रक्त स्राव होता हो, बाह्य लोह की भी आवश्यकता रहती है। इसी प्रकार बालक को भी लोहे की आवश्यकता रहती है। रक्त वर्ण मज्जा (Red Marrow) में जो रीढ़ की अस्थियाँ, उरोस्थि, पसलियाँ कपालास्थियाँ, जघनास्थियाँ में पाई जाती हैं अन्दर विद्यमान रक्तवाहिनियों की आभ्यन्तर कला के जिन जालाकार सेलों Reticulo Endothelial Cells से रक्त के रक्तकण विकसित होते हैं, उन्हें पहले Haemocytoblasts और कुछ विकसित होने पर Proerythroblasts कहा जाता है। क्योंकि ये आकार में रक्तकणों से बड़े होते हैं इन्हें Megaloblasts भी कहा

जाता है ।-क्योंकि-ये-आकार-में-रक्त-कणों-से-बड़े-होते-हैं- इस प्रारम्भिक अवस्था में इनका Cytoplasm भी Basophil या हलका नीला होता है Acidophil या गुलाबी नहीं होता। जब ये सेल विकसित होते होते रक्त कण के आकार के हो जाते हैं, तब इन्हें Normoblast. कहते हैं । मज्जा में यहां तक इनका विकास तभी ठीक ठीक होता है जब तक यकृत् तथा आमाशय की आभ्यन्तर कला में एक विशेष रक्तोत्पादक तत्व (Haemopoietic Factor) की उत्पत्ति ठीक ठीक होती रहे । क्योंकि Megaloblastic Anaemia में Liver Extract, Stomach Extract, Folic Acid. तथा Vit. B_{12} के देने से पूर्ण लाभ हो जाता है । धीरे धीरे मज्जा के इन सेलों की मींगी या Nuclei लुप्त हो जाती हैं और इनमें हिमोग्लोबिन उत्पन्न होता जाता है । इनका आकार भी रक्तकण जितना हो जाता है और ये Acidophil या गुलाबी रंग के हो जाते हैं और असली रक्तकण बन जाते हैं । इस अवस्था में इन्हें Erythrocyte कहा जाता है । Normocyte से Erythrocyte. तक के इनके परिवर्तन के लिये इन्हें Iron, Copper, Vitamin "C" Cobalt Anterior Pituitary Gland के Hormone (ACTH) तथा Thyroxine [illegible] (Metabolism के उत्तेजक तत्व) की [illegible] आवश्यकता रहती है ।

जब मज्जा में रक्त कणों की वृद्धि यथोचित रूप में नहीं होती तब रक्त के अन्दर कुछ बड़े आकार के रक्त कण भी दिखाई पड़ते हैं । रक्त में विषम आकृति के अर्थात् कुछ बड़े कुछ छोटे रक्तकण हों तो इस अवस्था को (Anisocytosis (Aniso = असमान) कहते हैं । जब मींगी का कुछ अंश किसी किसी कण में दीखता हो तो इसे Reticulocytosis कहते हैं । जब अपूर्ण परिणत रक्त कणों में [illegible] हलके नीले रंग के दाने दिखाई देते हैं या रक्त कण नीले रंग के दीखते हैं तब उन्हें Stippled Cells या Basophilic Cells कहते हैं

पाण्डु रोग :- Anaemia.

वात पाण्डु या रक्तोत्पत्ति वैषम्य जनित पाण्डु :- Dys-haemopoietic Anaemia:

(क) विटामिन बी१२ तथा फौलिक एसिड की न्यूनता से होने वाला पाण्डु Dysphaemopoietic Anaemia Due to Vit.12 तथा Folic-Acid Deficienty :- रक्तवर्ण मज्जा के अन्दर होने वाली रक्तकणों की उत्पत्ति में कमी हो जाने से जो पाण्डु रोग उत्पन्न होता है उसे

वात पाण्डु या Dyshaemopoietic Anaemiaकहा जाता है । रक्तकणों के निर्माण के लिये एक तो Castle का बाह्य तत्व (Extrinsic-Factor) जो Vitamin B_{12} है आवश्यक होता है । यह जान्तव प्रोटीन्स से प्राप्त होता है तथा मज्जा में Megaloblasts को Normoblasts में परिवर्तित करने तथा सुषम्ना काण्ड के नाड़ी सूत्रों (Neurones) और हाथ पैर की नाड़ियों (PeripheralNerves) के पोषणके लिये अत्यावश्यक होता है । रक्त कणों की उत्पत्ति के लिये Castle का आभ्यन्तर तत्व (Intrinsic Factor) of Wilkinson जो आमाशय रस (Gastric Juice) में विद्यमान एक Ferment या Enzyme के सदृश तत्व होता है आवश्यक होता है । यद्यपि यह अभी तक पृथक नहीं किया गया पर इसे Haemopoietin कहा जाता है । यह बाहर से भोजन द्वारा आये बाह्य तत्व (Extrinsic Factor) को बांधने अथवा शरीर में विलीन होने योग्य बनाने का कार्य करता है । इन दोनों के सहयोग से ही Vitamin B_{12} एक Haematinic Principle या Antianaemic Principle या रक्तकणों के बनाने वाले Muturation Factor के रूप में द्वादान्त्र से विलीन होकर यकृत में पहुंचता और वहां संचित होता रहता है, तथा वहां से रक्त द्वारा रक्त वर्ण मज्जा की सूक्ष्म रक्त वाहिनियों में पहुंचता और रक्त कणों के विकास में सहायक होता है । इन दोनों में से जब किसी एक की भी न्यूनता हो जाती है तो मज्जा में Megaloblastic Anaemia तथा रक्त में बड़े रक्त कणों वाला पाण्डु Macrocytic Anaemia हो जाता है । अर्थात् इस अवस्था में रक्तकण का व्यास ८.४ माइक्रोन, M.C.V. १००-१४५ घन माइक्रोन होता है ।

हमारे भोजन में विशेषत: पत्र शाकों में तथा यीस्ट में एक बी ग्रुप काVitamin,Folic Acid होता है जो आमाशय में से यकृत में जाकर संचित होता रहता है तथा वहां से रक्त द्वारा मज्जा में पहुंच कर रक्त कणों के विकास में सहायक होता है जिससे इसे भी Erythrocyte Maturation Factor कहा जाता है । जब यह भोजन में कम होता या यह Ascorbic Acid के अभाव में अपने क्रिया शील रूपFolinic Acid (Citrovarum Factor) में परिवर्तित नहीं हो पाता या आंतों में से इसका विलयन ठीक ठीक नहीं होता, या यकृत इसे ठीक ठीक संचय नहीं कर पाता तब भी मज्जा में Megaloblasts भली प्रकार Normoblasts में विकसित नहीं हो पाते जिससे Megaloblastic या

(nutritional anaemia)

अर्थात् प्रोटीन तथा फल साक्रियों के अभाव से होने वाला

Macrocytic Anaemia हो जाता है। हीन भोजन जनित पाण्डु (Nutritional Megaloblastic Anaemia) या Tropical Anaemia) ग्रहणी पाण्डु (Megaloblastic Anaemia of Sprue) तथा गर्भिणी पाण्डु (Megaloblastic Anaemia of Pregnancy) जो गर्भावस्था के पिछले महीनों में होता तथा डब्बों के दूध पर अर्थात् हीन भोजन पर पलने वाले बालकों में होने वाला बाल पाण्डु (Megaloblastic Anaemia of Infancy) सभी विशेषत: Folic Acid की कमी तथा Vitamin B_{12} की कमी से होते हैं एवं Macrocytic Type के होते हैं। यकृद्वृद्धि (Cirrhosis) के कारण भी Megaloblastic Anaemia (anaemia of liver disease) होता है क्योंकि यकृत इस Haem.Principle को स्टोर नहीं करता, परन्तु वह भी बहुत सम्भवत: हीन भोजन जनित (Nutritional Anaemia) ही होता है।

हीन भोजन जनित पाण्डु साधारणत: तो अस्पष्ट रूप में रहता है परन्तु तब कोई ज्वर हो जाता अर्थात् विषम ज्वर होता या अमीबिका प्रवाहिका होती या कोई दूसरा जीवाणु जनित रोग होता है तब यह स्पष्ट हो जाता है अर्थात् हीन भोजन करने वाले व्यक्ति गर्भिणी या शिशु में रोग क्षमता नहीं होती। परीक्षा करने पर अधिकतर रक्त कणों का व्यास ७.७ माइक्रोन से अधिक होता तथा Colour Index १ से अधिक होता अर्थात् यह पाण्डु Macrocytic. तथा Hyperchromic किस्म का होता है। हीन भोजन जनित पाण्डु ३०-३५ की आयु के नीचे होता है। क्षीण पाण्डु (Pernicious A.) इससे बड़ी आयु में होता है।

(ख) लोहे की न्यूनता से होने वाला पाण्डु :- Dyshaemopoietic Anaemia due to Iron Deficiency:

हीमोग्लोबिन के निर्माण के लिये २७ मिलि० लोह की प्रतिदिन आवश्यकता होती है। इसमें से २० मिलि० शरीर के अन्दर से टूटे हुए रक्तकणों से आता है। शेष भोजन से आता है। यदि भोजन का लोह आंतों में से ठीक ठीक विलीन न हो जैसा कि आंतों में विदाह जनित बैक्टीरिया के द्वारा Phytase के उत्पन्न हो जाने से होता है या शरीर में से लोहे की निकासी अधिक होती हो तो लोहे की न्यूनता हो जाती है।

(१) स्त्री पाण्डु :- Hypochromic Anaemia of Women: nutritional hypochromic anaemia

२० से ४५ वर्ष की अर्थात् मध्यम आयु की स्त्रियों

में आर्तव के द्वारा तथा गर्भ के द्वारा तथा दूध (Lactation) के द्वारा लोहांश के बाहिर जाते रहने से भोजन में लोहे की आवश्यकता विशेष रहती है। साधारणत: ६०० मिलिग्राम लोहा ऐसी स्त्री के शरीर में से प्रति वर्ष बाहिर जाता है। अब यदि इस आयु में स्त्री को प्रदर रोग रहे या मलेरिया आदि कोई जीवाणु जनित रोग हो जाय तो स्त्री को पाण्डु हो जाता है। जिसे लोह की न्यूनता से उत्पन्न पाण्डु (Iron-Deficiency Anaemia या Hypochromic Anaemia of Women) कहते हैं। ऐसी पाण्डुर स्त्री की परीक्षा की जाय तो रक्त कणों का औसतन व्यास ६.२ से ६.७ माईक्रोन, Mean Corpuscular Volume ७८ Cubic Microns से कम, Meancorpuscular Haemoglobin Concentration. ३२ प्रतिशतक से कम होता है। इसलिये इसे Microcytic Hypochromic Anaemia. कहते हैं। इस पाण्डु में हीमोग्लोबिन ४० या ५० प्रतिशतक रह जाता तथा Colour Index १ Unit से कम (.6) होता है। आमाशय की एसिड स्रावी ग्रन्थियों में लघुता (Atrophy) होती है जिससे एसिड बहुत कम बनता है। इसकी कमी के कारण लोह का विलयन जो ग्रहणी आशय (Duodenum) में होता है, नहीं हो पाता। Achlorhydric Anaemia of Women या मन्दाग्नि जनित स्त्री पाण्डु - स्त्रियों को गर्भावस्था के पिछले महीनों में लोहे की न्यूनता से भी पाण्डु रोग हो सकता है यदि इसे भूख न लगती हो, आमाशय शोथ रहता हो, आमाशय रस में अम्ल बहुत कम हो, श्लेष्म रस Mucus बहुत अधिक हो, जिव्हा साफ चट हो, रक्त परीक्षा करने पर रक्त कण Hypochromic तथा Micro-cytic. हों, Colour Index कम हो तो लोहे की न्यूनता से Normablasts विकसित नहीं हो पाते, ऐसा समझना चाहिये। ५८

२.. लोह की न्यूनता से होने वाला बाल पाण्डु :- Infantile Anaemia due to Iron Deficiency:- Hypochromic anaemia of infancy.

(क) सहज बाल पाण्डु :- माता को गर्भ के पिछले तीन महीनों में लगभग ३७५ मिलिग्राम लोहा प्राप्त होता है परन्तु यदि माता पाण्डुर हो या शिशु ७-८ वें मास में समय से पहले हो जाय तो उसे लोहा कम मिलता है जिससे दूसरे महीने के अन्दर अन्दर ही उसे पाण्डु हो जाता है। इसे सहज बाल पाण्डु कहते हैं।

(ख) पोषण की न्यूनता से होने वाला बाल पाण्डु :(Nutritional Infantile Anaemia) केवल डब्बे के दूध पर पाले गये या उबाले हुये गाय के दूध पर पाले गये बालकों में ८ वें से ११ वें

या। Microcytic hypochromic होता है। पोषण की कमी से
यह पाण्डु होता है।

मास के बीच में होता है । इन दूधों में लोहे के न होने या Ascorbic Acid. के कि जो लोहे की शरीर में विलयन के लिये आवश्यक होता है, न होने से यह होता है अर्थात् यह बाल पाण्डु Normocytic Hypochromic Anaemia होता है । विशेषत: यदि ऐसे बालक में कोई ज्वर रहे तो लोहे के शरीर में विलयन के और भी कम हो जाने से यह पाण्डु होता है ।

(ग) विष जनित पाण्डु या Dyshaemopoietic Anaemia due to some Toxin or Secondary Hypoplastic Anaemia:-

Marrow Hypofuction, Marrowplasia, Aplastic पाण्डु सहज व आगन्तु दो प्रकार का होता है । यहां आगन्तु का उल्लेख किया जाता है ।

कभी कभी किसी जीवाणु विष के मज्जा पर दुष्प्रभाव (Degenerative) प्रभाव से अथवा किसी तीव्र औषधि से जैसे Organic Arsenic, Lead, Gold, Chloramphenicol, Mepacrine, Tridione. Thiouracil, कोलयर के धूम Radium आदि किसी के मज्जा पर दुष्प्रभाव से रक्तकणों का निर्माण कर्म ही मन्द हो जाता है । शरीर के अन्दर उत्पन्न होने वाले किसी विषैले द्रव्य जैसे जीर्ण वृक्क रोग (Chronic Nephritis) में मूत्र विष संचार (Uraemia) के कारण भी मज्जा में क्षीणता (Hypoplasia) होकर पाण्डु हो जाता है । कैन्सर, ग्रहणी रोग, त्रिदोष पाण्डु, Leukaemia के उपद्रव रूप में भी यह रोग हो सकता है । X-Rays. तथा एटम के Radiation का मज्जा पर दुष्प्रभाव होकर भी मज्जा रोग जनित पाण्डु हो सकता है । यह पाण्डु धीरे धीरे अज्ञात रूप में होता है, और इस अवस्था में Thrombocytopenia के होने के कारण रक्त स्राव होने का लक्षण भी होता है । इस अवस्था में रक्त कण नार्मल आकार के नार्मल रंग के होते हैं अर्थात् यह पाण्डु Normocytic तथा Normochromic होता है तथा पाण्डु के साथ साथ Polymorphic Leucopenia होने का लक्षण भी होता है । रक्त कणों की संख्या बहुत घटी हुई होती Colour Index १ Unit होता है । स्पष्ट है कि इस प्रकार का पाण्डु एक कष्ट-साध्य रोग है । इस रोग का रोगी युवक, श्वेत पीले रंग का होता पर कृश नहीं होता ।

(घ) त्रिदोष पाण्डु या Dyshaemopoietic Anaemia Due to Lack of Intrinsie Factor. Pernicious Anaemia. Addison's Anaemia.

पुरुष के शरीर में बनता है । यह कुत्तों में काफी से न होने का Ascorbic Acid. के लिए यह कारण नहीं शरीर में निर्माण के लिए आवश्यक बनता है, न होने से यह बनता है अर्थात् इस प्रकार पाण्डु Macrocytic Hyperchromic anaemia होता है । निर्माणार्थ: शरीर में आवश्यक के कारण स्वरूप रोग की कमी के कारण से निर्माण के अतिरिक्त और इस की कमी से यह पाण्डु होता है ।

(ग) विषों द्वारा पाण्डु या Hypoplastic anaemia due to some Toxin or Secondary Hypoplastic anaemia:-

Marrow Hypofunction, Marrowplasia, Aplastic पाण्डु मज्जा में अवसाद का प्रभाव का होता है । इसके कारण का उल्लेख निम्न प्रकार है ।

अस्थि मज्जा निष्क्रिय, विकृत, विषाक्त के कारण या दुष्प्रभाव (Degenerative) रूप से अनेक विषों जैसे कोई रासायनिक Organic Arsenic, Lead, Gold, Chloramphenicol, Mepacrine, Tridione, Hidantoin, बेन्जीन के वाष्प तथा Radium आदि विषों के प्रभाव या दुष्प्रभाव से रक्तकणों का निर्माण कम हो जाता है । शरीर के अन्दर उत्पन्न होने वाले विषों से निर्माण कम होने से जीर्ण वृक्क रोग (Chronic Nephritis) में यह विष मूत्रविष (Uraemia) के कारण भी मज्जा में अविकास (Hypoplasia) अथवा पाण्डु हो जाता है । कैंसर, यकृत रोग, विकिरण पाण्डु, Leukaemia के ग्रन्थिगत प्रकार में भी यह रोग हो जाता है । X-Rays. तथा रेडियम के Radiation या प्रभाव तक दुष्प्रभाव पड़ता की मज्जा रोग जनित पाण्डु हो जाता है । इस पाण्डु आदि कारण मज्जा रक्त में बनता है, इसके साथ Thrombocytopenia के कारण के कारण रक्त स्राव होने का लक्षण भी मिलता है । यह अवस्था में रक्त कण निर्माण तथा इसके रंग के कारण के कारण इस पाण्डु Normocytic तथा Normochromic होता है तथा पाण्डु के साथ साथ Polymorphic Leucopenia भी मिलता अवस्था भी होता है । रक्त कणों की संख्या कम होने से Colour Index १ Unit होता है । रक्त के कई सूत्र का पाण्डु इस प्रकार का होता है । भाग रक्त का अंश होता रहता है ।

(घ) विकारजन्य पाण्डु या Hyperchromic anaemia due to lack of Intrinsic factor. Pernicious Anaemia. Addison's anaemia

जब ४० से ७० वर्ष की आयु में आमाशय की श्लेष्म कला के क्षीण (Atrophied) हो जाने से एसिड, पैप्सिन तथा आभ्यंतर तत्त्व (Intrinsic Factor of Castle) जो Fundus की श्लेष्म कला से उत्पन्न होता है, जिसे (Hamopoietin कहते हैं) सभी लुप्त हो जाते हैं। तब इसे Achylia Gastrica कहते हैं। सम्भवत: इन व्यक्तिओं में आमाशय की यह निर्बलता सहज होती है। इस आभ्यन्तर तत्त्व की कमी या अभाव के कारण भोजन के द्वारा आये हुये बाह्य तत्त्व (Extrinsic Factor या Vitamin B_{12} से बनने वाला Haematinic Principle बन कर यकृत् प्लीहा और वृक्कों में जमा नहीं हो पाता जिससे रक्त वर्ण मज्जा के अन्दर उत्पन्न होने वाले Megaloblasts भली प्रकार विकसित होकर वहां Erythroblasts और Normoblasts में परिवर्तित नहीं हो पाते। एवं बड़े बड़े रक्त कण रक्त में प्रसरण कर जाते हैं। प्राणियों के आमाशय को सुखाकर बनाये चूर्ण से इस रोग को ठीक किया गया है। इससे भी यही पता लगता है कि Intrinsic Factor, का अभाव इसरोग का कारण है। मज्जा की परीक्षा करने से उसमें Megaloblasts तथा Normoblasts अधिक संख्या में पाये जाते हैं। रक्त की परीक्षा करने से रक्त कणों का व्यास ८.५ माइक्रोन के लगभग पाया जाता है। जिससे इस पाण्डु को Macrocytic या Megaloblastic Anaemia कहते हैं। रक्त कणों के निर्माण में ह्रास हो जाने से ३-२ या १ मिलियन रक्त कण एक क्युबिक मिलीमीटर में पाये जाते हैं। श्वेतकण भी घटकर एक क्यूबिक मिलिमी० में ४ हजार रह जाते हैं तथा [redacted] दण्ड कण ५० हजार रह जाते हैं। हीमोग्लोबिन भी घट जाता है पर उतना नहीं, जितना रक्त कण। वह ३० या ४० प्रतिशतक होता है। इसीलिये Colour Index १ युनिट से ऊपर होता है (१.३)। Mean Corpuscular Haemoglobin ५० माईक्रो माइक्रो ग्राम Mean Corpuscular Haemoglobin Concentration ३५ के लगभग होता है। बहुत से रक्त कणों के आकार में बड़ा होने केकारण Mean Corpuscular Volume ११५-१३० क्यूबिक माईक्रोन के लगभग होता है। Poikilocytosis, Anisocytosis, Megalocytosis, Polychromasia. तथा Stippled Basophilic Cells के होने के लक्षण होते हैं। इन अप्राकृतिक रक्त कणों के Reticuloendothelial Cells के अन्दर अधिक मात्रा में टूटने से Bilirubin की मात्रा रक्त में अधिक होती है अर्थात् Icterus Index 4 Units से अधिक होता है। मूत्र तथा मल में Urobilinogen अधिक मात्रा में होता है। इसीलिये त्वचा में पाण्डुता के साथ पीलापन भी होता है। Vanden Bergh Reaction Indirect पाज़िटिव होता है। इस रोग

में आमाशय श्लेष्म कला में क्षीणता (Atrophy) तो होती है जिससे रोगी को भूख नहीं लगती पर इसके अतिरिक्त कभी कभी सुषम्नाकाण्ड के सूत्रों (Posterolateral Columns) में भी क्षीणता हो जाती है । इस रोग की उचित चिकित्सा न हो तो २-३ वर्ष में घातक हो जाता है । पेट में केन्सर के रोग से इसका सन्देह नहीं होना चाहिये । उसमें भार अधिक घटता है, रोगी का रंग पीला न हो के फीका होता है, आमाशय रस में रक्त तथा Lactic Acid मिलते हैं ।

वात पाण्डु या Dyshaemopoietic Anaemias के लक्षण :-

(क) शरीर में रक्त कणों तथा हीमोग्लोबिन के कम हो जाने से अंगों को आक्सिजन की मात्रा कम प्राप्त होती है जिससे उनकी कार्य शक्ति घट जाती है । उदाहरणत: आक्सिजन के कम मिलने से हृदय मांस शिथिल (Dilated) हो जाता है । श्रम करने पर धड़कने लग जाता है तथा रोगी को श्वास चढ़ने लग जाता है । उसकी निर्बलता से रक्त भार गिर जाता है । इसकी निर्बलता से ही रोगी के पावों में श्वयथु हो जाता है । आमाशय को आक्सिजन कम मिलने से पाचक अग्नि मन्द हो जाती है । क्षुधा कम लगती है, भोजन के बाद पेट कुछ भारी लगने लगता है । मस्तिष्क को रक्त कम मिलने से मानसिक श्रम नहीं होता, सहन शक्ति कम हो जाती है । तथा निद्रा कम आती है। इस रोग में बहुधा जिव्हा सूज जाती है अर्थात् रक्त वर्ण हो जाती है + (Glossitis हो जाता है) तथा मुख आ जाता है + (Stomatitis हो जाता है) विशेषत, ग्रहणी तथा क्षीण पाण्डु में ऐसा होता है । देखने में रोगी का शरीर पाण्डर दीखता है । विशेषत: अंगुलियों के सिरे, नख, नाक, कान, तालु, नेत्र, जिव्हा ये अंग पाण्डर दिखाई पड़ते हैं । पाण्डु रोग तीव्र हो, विशेषत: क्षीण पाण्डु (Pernicious Anaemia) हो तो सुषम्ना काण्ड को आक्सिजन न मिलने से उसमें क्षीणता हो जाती है जिससे पावों में नाड़ी रोग (Neuritis) के Paraesthesia आदि लक्षण भी हो जाते हैं । दृष्टि नाड़ी (Optic Nerve) में क्षीणता के होने से दृष्टि कम होती जाती है।

२.. रंजक द्रव्य की कमी जब विशेष होती है अर्थात् Microcytic Hypo-chromic पाण्डु होता है तब शरीर में फीकापन अधिक स्पष्ट होता है । चेहरा देखने में पाण्डर तथा कुछ फूला हुआ दीखता है । हृदय शैथिल्य भी अधिक होता है । जिससे स्वल्प श्रम से भी श्वास चढ़ जाता तथा Haemic Murmur भी सुनाई पड़ता है । मंदाग्नि

का लक्षण रहता है। पावों में भी शोथ दीखता है तथा नख क्षीण हो
कर नतोदर से हो जाते हैं (जिसे Koilonychia कहते हैं) स्त्री
पाण्डु रोग एक चिरस्थायी रोग है।

पित्त पाण्डु :- Haemolytic Anaemias:-

रक्त में रक्त कणों के अधिक मात्रा में नष्ट
हो जाने से जो पाण्डु रोग उत्पन्न होता है उसे पित्त पाण्डु Haemolytic
Anaemia(Intravascular Blood Destruction) कहते हैं।

(क) रक्त रोग जनित कामला या पाण्डु जनित कामला :- Acquired
Haemolytic Jaundice or Anaemia. Acquired Acholuric
Jaundice.

विषम ज्वर तथा Black Water Fever
तथा Haemolytic Streptococcal, Staphylococcal Septicaemia. के
कारण कामला युक्त पाण्डु हुआ करता है। यद्यपि बहुत सों का मत
है कि मज्जा पर पुयविष (Sepsis) का दुष्प्रभाव होकर उसमें
रक्त कणों का निर्माण मन्द पड़ जाने से यह पाण्डु होता है पर
पूय का रक्त कणों पर विनाशक (Haemolytic) प्रभाव भी अवश्य
होता है। मलेरिया में तो पित्त पाण्डु Haemolytic Anaemia
ही होता है। जीवाणु संक्रमण (Infection) चिरकाल रहे तो
पाण्डु रोग हो जाता है। जैसे चिरस्थायी Bacterial Endocardi-
tis. में होता है। इसका कारण स्पष्ट नहीं, कहा जाता है कि शरीर
में पूय या शोथ कहीं पर हो तो उसकी विष के कारण रक्त नष्ट
होता है। औषधि जनित पाण्डु अर्थात् Lead, Arsenic Quinine,
Primaquine, Phenyl Hydrazine. आदि के कारण भी कभी कभी रक्त
कणों का विनाश होकर कामला का रोग (Toxic Haemolytic Ja-
undice), हो जाता है। Snake Venom भी रक्त कण नाशक
होता है। इस रक्त नाश जनित पाण्डु में रक्त में पित्त रंजक द्रव्य
बढ़ जाता है। (Bilirubin anaemia) होता है) मूत्र में बिलिरुबिन नहीं पर
Urobilinogen बढ़ जाता है। मल में Stercobilin की
अधिकता से पीलापन होता है। Icterus Index की अधिकता
त्वचा में पाण्डुता के साथ कुछ पीलेपन का मिश्रित होना, रक्त स्राव
हो जाना, ये लक्षण भी होते हैं। इस रोग में कामला का रंग हलका
सा ही होता है। गहरा नहीं होता। यह Normoblastic या
Normocytic Hypochromic Anaemia है। जब यह तीव्र रूप में
होता है तब श्वेत कण वृद्धि (Leucocytosis) भी होती है। और

जब यह चिरस्थायी रुप में होता है तब श्वेत कण नार्मल संख्या में ही रहते हैं। रक्त कणों के अधिक संख्या में टूटने के कारण प्लीहा वृद्धि और कुछ कुछ यकृत वृद्धि के लक्षण भी होते हैं। रक्त कण २० लाख तक रंजक द्रव्य ३० प्र०श० तक रह जाते हैं। Vanden Bergh Test Indirect Positive होता है। अर्थात् सीरम में अलकोहल मिलाने पर तुरन्त लाल रंग आ जाता है क्योंकि Blood Bilirubin के अधिक बनने के कारण उसका बहुत सा अंश यकृत् के सेलों में से बिना निकले ही रह जाता है। यह वृक्कों की झिल्ली में से भी मूत्र द्वारा नहीं निकलता।

प्रतिविष जनित पाण्डु या कामला :- Autoantibody Anaemia:- या Paroxysmal Cold Haemoglobinuria,

इस पाण्डु में रक्त कणों के अपने अन्दर कोई सहज विकार नहीं होता पर रक्त के सीरम में कोई Antibodies या Haemolysins या प्रति विष उत्पन्न हो जाते हैं जो रक्त कणों के चारों ओर चिपक कर उनके अन्दर विद्यमान Enzymes को निश्चेष्ट करके उन्हें खण्डित करते एवं पाण्डु या कामला का कारण हो जाते हैं। किसी संक्रामक रोग (Infection) के बाद में ये रक्त में उत्पन्न हो जाते हैं तथा फिर सर्दी लग जाने पर ये रक्त कणों पर उपर्युक्त प्रतिक्रिया करके उन्हें खण्डित कर देते हैं जिससे कभी कभी मांजिष्ठ-मेह या Cold Haemoglobinuria का रोग हो जाता है। समय समय पर सर्दी लग के शरीर में तथा पेट में दर्द हो जाता और ज्वर हो जाता है तथा मंजिष्टा के जल (Port Wine) के रंग का मूत्र आने लगता है। टूटे रक्त कणों में से निकले Haemoglobin से Bilirubin की उत्पत्ति होने से कुछ कुछ कामला रोग भी हो जाता है। प्लीहा कुछ बढ़ी हुई होती है। हीमोग्लोबिन के रक्त में आने पर Protein Shock होता है। अतः श्वेत कणों की न्यूनता (Leucopenia) का भी लक्षण होता है। समय समय पर इस रोग के होते रहने से इसे Paroxysmal - Cold Haemoglobin Uria कहते हैं। वस्तुतः सर्दी में तो Auto-haemolysin पदार्थ रक्त कणों से चिपक जाता है। सर्दी लगने के बाद जब शरीर फिर गर्म होता है तब वह Haemolysis का कारण हो जाता है।

कभी कभी फिरंग रोग की तृतीय अवस्था में फिरंग प्रतिविष Syphilitic Autohaemolysin या Auto Anti-Body, उत्पन्न हो जाता है। सर्दी लगने पर इसके द्वारा रक्त कणों के भारी संख्या में नष्ट होने से बहुत सा हीमोग्लोबिन प्लाज्मा में आ

जाता है । इससे Haemoglobinuria हो जाता है तथा Haemolytic कामला भी हो जाती है । Coombs Test से इस Antibody Anaemia का निश्चय हो जाता है । (अर्थात् मनुष्य के Globulin को खरगोश में प्रविष्ट करके उसके अन्दर उत्पन्न Anti Human Globulin Serum को Coomb. का Fluid कहते हैं इसके साथ रक्त कणों को मिश्रित करने पर रक्त कण Agglutinated हो जांय तो इसे Coomb's-Test पाज़िटिव कहा जाता है) ।

(ख) सहज पाण्डु या सहज कामला :- Congenital Haemolytic Jaundice Congenital Haemolytic Anaemia. Hereditary Spherocytosis. कुछ एक परिवारों में एक से अधिक व्यक्तियों में बालकपन से ही पाण्डुता तथा हलकी कामला के लक्षण होते हैं । रक्त की परीक्षा करने पर पता लगता है कि इनके रक्त कण चक्रिकाकार (Biconcave) न होकर गोलाकार (Spheroid) होते हैं । सम्भवत: जन्म से इनके अन्दर ग्लूकोज के पाचन करने वाले (Enzyme) में कोई न्यूनता होती है जिससे ये गोल होते हैं । इस प्रकार असाधारण होने के कारण ये अधिक भंगुर होते हैं जिससे प्लीहा के Reticuloendothelial सेलों में ये अधिक मात्रा में टूटते रहते हैं । इसीकारण एक तो इन्हें प्लीहा वृद्धि और दूसरा पाण्डुता का लक्षण रहता है । रक्त कणों के अधिक संख्या में टूटने से Bilirubin की उत्पत्ति अधिक होती है जिसके कारण इन्हें हलकी सी कामला होने का लक्षण भी रहता है । अति शारीरिक श्रम करने तथा ज्वर आदि होने पर इसमें पाण्डुता तथा कामला के लक्षण अधिक स्पष्ट हो जाते हैं । बहुधा यह रोग मृदु रूप में ही रहता है । परन्तु इसके कारण इनमें पित्ताशय के अन्दर Calcium Bilirubinate की पथरियों के बन जाने का उपद्रव हो जाता है ।

रक्त की परीक्षा करने पर इस रोग का निश्चय हो जाता है । साधारण व्यक्ति के रक्त कण ·४५ प्रतिशतक Hypotonic Saline Solution में टूटने लगते हैं । परन्तु इस रोगी के रक्त कण ·६ प्रतिशतक के Saline Solution में ही टूटने लग जाते हैं और ·४ प्रतिशतक Saline Solution में सर्वथा टूट जाते हैं । रक्त कणों का व्यास तो छोटा होता है परंतु उनके गोलाकार होने से अर्थात् उनमें Spherocytosis होने से Mean-

Corpuscular Volume, तथा Meancorpuscular Haemoglobin. नार्मल होते हैं। Colour Index भी नार्मल होता है। रक्त कणों के अधिक संख्या में टूटते रहने से Reticulocytes अधिक मिलते हैं (१-२ प्र०श० से अधिक) Vanden Bergh Test Indirect Positive. होता है क्योंकि रक्त में Blood Bilirubin अधिक होता है जो वृक्कों की झिल्ली में सेन निकल सकने के कारण मूत्र में नहीं आता। इसीलिये इसे Acholuric Jaundice भी कहते हैं। मूत्र में Urobilin (Urobilinogen) की अधिकता से गहरा पन होता है। मूत्र में Bilirubin नहीं मिलता मल भी Stercobilin की अधिकता से गहरे रंग का होता है। यह रोग रोगी के लिये विशेष हानिकर नहीं होता।

रक्त स्राव जनित या उपद्रव रूप पाण्डु :-

Haemarrhagic Anaemia :- ५० वर्ष से ऊपर की आयु में पाण्डु हो तो वह बहुधा आंतों में केन्सर के कारण होता है। मल में Occult, रक्त के मिलने अथवा Barium X-Ray, द्वारा उसकी परीक्षा होती है। उस अवस्था में रक्त में Polymorphs की वृद्धि भी पाई जाती है।

वात पाण्डु या रक्तोत्पत्ति वैषम्य, Deficiency Dyshaemopoietic Anaemia. की चिकित्सा :-

१.. Nutritional Megaloblastic Anaemia:- के लिये Folic Acid (Folvite, Novafol) १०,२० मिलिग्राम दैनिक मात्रा में कुछ सप्ताह देने से तथा दूध अण्डा, रोटी, घृत ~~मक्खन~~ आदि के साथ साथ Vitamin B Complex के या Marmite के $\frac{1}{2}$ औंस की मात्रा में देने से शीघ्र लाभ प्रतीत होता है। फिर इसकी ५ मिलिग्राम की चालू मात्रा कुछ काल दी जानी चाहिये। विटामिन B12 के साथ मिले योग (Rubrafolin Tab. तथा सहायक रूप में Crude Liver Ex.) भी ~~कभी कभी~~ लाभ दे सकते हैं। Liver ex भी B12 केवल के कारण कार्यकारी होता है (१ U.S.P. unit = १५ mcgm विटामिन B12)

२.. गर्भिणी पाण्डु, बाल पाण्डु तथा ग्रहणी पाण्डु : Megaloblastic Anaemia of Pregnancy of Infancy: तथा of Sprue. के लिये भी Folic Acid इसी मात्रा में कुछ काल देना चाहिये। Liver ex भी साथ देना चाहिये। Folic-Acid, से युक्त भोजन जैसे Yeast (१०० ग्राम में ·७ मिलिग्राम), गेहूं का आटा (१०० ग्राम में ·०५ मिलि०), पत्र ~~शाक~~ शाक (१०० ग्राम में ·०१ मिलि०), दाल (१०० ग्राम में ·०७ मिलिग्राम) तथा प्रोटीन भोजनों आदि के प्रयोग से भी लाभ होता है। गर्भिणी में Hypochromia हो M.C.H.C. भी कम हो Colour Index

Corpuscular Volume, तथा Meancorpuscular Haemo.globin.
सामान्य होते हैं। Colour Index भी सामान्य होता है। रक्त स्मीयर में
अधिक संख्या में छोटी रक्त के Reticulocytes अधिक मिलते हैं
(५-२ प्रति० से अधिक) Vanden Bergh Test Indirect Positive होता
है क्योंकि रक्त में Blood Bilirubin अधिक होता है पर मूत्र
की नियमित में Bilirubin मूत्र के बराबर पास में नहीं आता। इसलिए
इसे Acholuric Jaundice भी कहते हैं। मूत्र में Urobilin (Uro-
bilinogen) की अधिकता से मिलता होता है। मल Stercobilin
की अधिकता से गहरे रंग का होता है। इस रोग रोगी में रक्त निर्माण
उपस्थित नहीं होता।

रक्त नाश अधिकता का दूसरा रूप है पाण्डु :-
Haemoglobic Anaemia :- ५० वर्ष से ऊपर की आयु में
पाण्डु की एक प्रकार अवस्था में होता है कारण होता है। यह है
Occult. रक्त के गिरने पर Serum X-ray, [illegible]
होता है। इस अवस्था में रक्त में Polymorphs की वृद्धि भी
पाई जाती है।

रक्त पाण्डु का पोषण के कारण, Deficiency, Avitaminosis

की चिकित्सा :-

१. Nutritional Macrocytic anaemia :- में Folic Acid(Folvite
e Novarol) ५०.१० मिलीग्राम दैनिक मात्रा में मुख द्वारा दिया जाता है
[illegible] Vitamin B Complex
[illegible] है Anaemia में [illegible]
[illegible]
[illegible] Hb [illegible] Reticulin [illegible]
[illegible] Liver [illegible]

२. [illegible] पाण्डु, रक्त पाण्डु : Megaloblastic
anaemia of [illegible]

की Folic acid [illegible]
acid, [illegible] Iron [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

भी कम हो तो Ferrous Gluconate ४ ग्रेन के दिन में तीन बार देने या Ferrous Sulphate के तीन ग्रेन की मात्रा में दिन में तीन बार देने से भी इस रोग में लाभ होता है। ग्रहणी पाण्डु में Cortisone की चिकित्सा के द्वारा आंत में से प्रोटीन्स तथा फैट्स का विलयन बढ़ जाता है। यकृद्रोग जनित पाण्डु में Liver Ext. या Folic acid का प्रयोग करना चाहिये।

Pernicious Anaemia:- के लिये Vitamin B_{12} (Anacobin, Macrabin) १०० माईक्रोग्राम की मात्रा में मांस द्वारा कुछ दिन तक दिया जाता है। रोगी की अवस्था के सुधर जाने पर फिर ५०-१०० माईक्रोग्राम मात्रा में इसका महीने में एक या दो बार प्रयोग सदा के लिये जारी रक्खा जाता है। इस औषधि के साथ लोह का प्रयोग भी भोजन बाद कुछ काल तक किया जाता है। Vitamin B_{12} के भोजन जैसे दूध (१०० ग्राम में १० माईक्रो०), आटा (१०० ग्राम में ·७ माईक्रो० अण्डा (१०० ग्राम में ·५ माईक्रो०) आदि भी देने चाहिये। विटामिन सी भी १०० मिलि० दैनिक मात्रा में दिया जाता है।

इस रोग की चिकित्सा को जारी न रखें तो सुषम्ना काण्ड में क्षीणता का लक्षण प्रकट होने लगता है। इनमें विटामिन (बी12) की बड़ी मात्रा में ६ मास जारी रखना चाहिये।

विष जनित पाण्डु :-(Second Hypoplastic Anaemia)

कारण का निवारण करने तथा Cortisone चिकित्सा (Prednisolone १० मिलि० ८-८ घन्टे पर) से लाभ प्रतीत होता है। यद्यपि बहुत काल तक इसे जारी नहीं रखना चाहिये। Methyltestosterone १०० मिलि० के प्रतिदिन मुख द्वारा देने से या Testosterone-Enanthate in Oil, ६०० मिलि० के मांस द्वारा सप्ताह में एक बार देने से लाभ हो सकता है।

लोहे की न्यूनता से उत्पन्न पाण्डु :-Dyshaemopoietic Anaemia due to Iron Deficiency या Nutritional Hypochromic Anaemia:-

को चिकित्सा :-

इस पाण्डु रोग में Ferri Et Ammonium Citras १० से ३० ग्रेन की मात्रा में Aqua Chloroform १ औंस में मिलाकर दिन में तीन बार भोजन बाद दे देना चाहिये। या Ferrous Sulphate ३ ग्रेन की गोली के रूप में तीन चार बार भोजन बाद या Ferrous Sulphate Mixture (B.P.C.) भोजन बाद या Ferrous Gluconate ५ ग्रेन

(Ferro-Mandets)

Ferrous sulph. Folic acid (Forromidon)
(Rubraferate squibb)

Ferrous Succinate २½ ग्रेन की बनी गोली दिन में तीन बार भोजन बाद दी जाती है या Ferrous Fumarate ३ ग्रे० गोली बार बार या केवल Ferrous Gluconate(Fergon) ५ ग्रेन की १-२ गोलियां या Fersolate(Ferrous Sulphate ७ ग्रेन, Copper Sulph: १।१०० ग्रेन Magnese Sulphate १।१०० ग्रेन Glaxo) ३ ग्रेन की गोलियां तीन बार भोजन बाद दी जाती हैं। Iron Choline Citrate १ ग्राम प्रति दिन देने से भी यही लाभ होता है। लोहे के शरीर में विलयन के लिये Ascorbic Acid १००,२५० मिलिग्राम मात्रा में प्रतिदिन देना चाहिये। अजीर्ण तथा आध्मान के लिये Hcl. हलका ३० बुन्द तथा Glycerin of Pepsin १ ड्राम भोजन बाद दे सकते हैं। Irondextran- (Imferon, १ सी०सी० में ५० मिलि० लोहा) पहले इसकी १ सी०सी० की और फिर २-५ सी०सी० की मात्रा मांस द्वारा प्रतिदिन या प्रति दूसरे दिन तब तक दी जाती है जब तक Haemoglobin की जो प्रतिशतक कमी हुई है वह पूर्ण न हो जाय। इसकी १ प्र०श० कमी के पीछे ४० मिलिग्राम लोहा दिया जाता है। Ferrivenin (Saccharated-Ironoxide) ५० मिलि० प्रथम दिन, फिर १०० मिलि० प्रतिदिन शिरा द्वारा धीरे धीरे दिया जाता है। इसका कोई अंश शिरा से बाहिर नहीं निकलना चाहिये। कुल मिला कर १ ग्राम से कम ही इसकी मात्रा रहनी चाहिये। यह लोह चिकित्सा १ मास जारी रहनी चाहिये।

१,१½ वर्ष की आयु के, डब्बे के दूध या माता के दूध पर ही पाले गये बालकों में लौह की न्यूनता से जो पाण्डु रोग होता है उसके लिये Ferri Etammonium Citras १½ ग्रेन की मात्रा में Aqua Chloroform मिला कर पीने के, दूध के साथ दिन में तीन बार देना चाहिये या ग्लिसरीन से मीठे किये जल में मिला के पिला देना चाहिये या Ferrous Sulphate १ ग्रेन की मात्रा में Dilute-Hypophosphorus Acid ½ बुन्द, Dextrose १५ ग्रेन, Aqua Chloroform. १ ड्राम में मिला कर दिन में तीन बार दिया जा सकता है। या Fersolate को पानी में मिलाकर बालक के दूध में दे सकते हैं या Syrup Ferrous Sulphate और Amino Acetate को मिला कर बने Plasmet Syrup के २ चम्मच दिन में ३ बार बालक को दिये जा सकते हैं। (८ वर्ष के बालक की मात्रा) Imferon १ सी०सी० मांस द्वारा सप्ताह में दो बार दो सप्ताह तक दिया जा सकता है।

अथवा Ferradol (Ferri et ammon. cit., [illegible] malt) का प्रयोग कर सकते हैं। या Calron (Ferri et ammon. cit., vitamins, glycerophosphates) [illegible] देवें।

लोह युक्त आहार द्रव्य जैसे मसूर की दाल, (१ औंस में २.१७ मिलिग्राम), पत्र गोभी (१ औंस .२५ मिलि०), गाजर (१ औंस .१६ मिलि०), सेव (१ औंस .०८ मिलि०), शलगम (१ औंस .११ मिलि०), आलू (१ औंस .२१ मिलि०), आटा (१ औंस .४५ मिलि०), अण्डा (१ औंस .७२ मिलि०), संतरा (१ औंस .०७ मिलि०), प्याज (१ औंस .०६ मिलि०) आदि में से किन्हीं द्रव्यों का प्रयोग करने से भी पाण्डु रोग ठीक होता है।

Haemolytic Anaemia : रक्तनाश जनित पाण्डु चिकित्सा :-

Acquired Haemolytic Jaundice के लिये जीवाणु नाशक (Antibiotic या Anti Infective) औषधियों के प्रयोग से तथा बलवर्धक (Supportive) चिकित्सा से लाभ होता है। जिन औषधियों या विषों के कारण रक्त कण नष्ट हो रहे हों, उनका प्रतिकार करना चाहिये। इस पाण्डु में Cortisone के प्रयोग से भी सामयिक लाभ होता है। Anti Body Anaemia के लिये Cortisone व ACTH विशेष लाभदायक हैं। पहले ACTH १२५-२०० Mg. १-२ सप्ताह दे के फिर मुख से Prednisolone १५-२० मिलि० दैनिक देना चाहिये [illegible]

Chronic Haemolytic Jaundice:- के लिये अधिक गर्मी, तेज धूप, अति शारीरिक श्रम, तीक्ष्ण ऊष्ण गुण औषधियों और आहार द्रव्यों तथा संक्रामक ज्वरों से सदा बचना चाहिये। Corticosteroids के देने से हीमोग्लोबिन की कमी पूर्ण हो जाती है। ऐसा हो जाने पर इसकी स्वल्प मात्रा जारी रखनी चाहिये।

आयुर्वेदानुसार :-

वात पाण्डु- शरीर तथा रक्त को दुर्बल (Asthenic) करने वाले कारणों से उत्पन्न पाण्डु को जिसमें शरीर के अन्दर बल क्षय के सूचक लक्षण विशेष होते हैं तथा निर्बलता के कारण ही जिसमें त्वचा का रंग कुछ काला हो जाता है, वातिक पाण्डु कहा जाता है। (च०।चि०।१६)

पैत्तिक पाण्डु :-

शरीर में रक्त आदि धातुओं के पक्व कर्म को बढ़ाने वाले कारणों से उत्पन्न हुई रक्त की न्यूनता को जिसमें पित्त (Bilirubin) की उत्पत्ति की अधिकता के कारण त्वचा, मूत्र, पुरीष आदि में पीत वर्ण झलकता है पैत्तिक पाण्डु कहते हैं।

श्लैष्मिक पाण्डु :-

नाना विध कारणों से शरीराग्नि के मन्द हो

जाने पर उसके परिणाम रुप में शरीर में प्रोटीन के कम हो जाने से जो रक्त की न्यूनता होती है जिसमें मन्दाग्नि के कारण ही अन्नारुचि छर्दि, गुरुता (पेट में भारीपन) आदि लक्षण विशेष होते हैं तथा जिसमें शोथ (Oedema) के कारण त्वचा, नेत्र, मूत्र पुरीष आदि का रंग श्वेत वर्ण होता है। उसे श्लैष्मिक पाण्डु कहा जाता है।

त्रिदोष पाण्डु :-

एक तो शरीर को दुर्बल कर देने वाले कारणों, दूसरा उसकी रक्त आदि धातुओं का अधिक मात्रा में पचन करने वाले कारणों, तथा तीसरा पाचक अग्नि को मन्द कर देने वाले कारणों से जो रक्त की न्यूनता होती है जिसमें बल क्षय, पीत वर्णता, तथा अन्नारुचि तथा त्वचा में [illegible] कृष्णता, पीतता और श्वेतता आदि तीनों दोषों के प्रकोप के लक्षण मिश्रित होते हैं उसे त्रिदोष पाण्डु कहा [illegible] गया है। इस प्रकार आयुर्वेद के वातिक पाण्डु से Dyshaemopoietic पित्त पाण्डु से Haemolytic तथा कफ पाण्डु [illegible] में यकृत्‌रोग वृक्क रोग, अजीर्ण-श्वयथु आदि से उत्पन्न पाण्डु से और त्रिदोषज से Pernicious पाण्डु का अभिप्राय प्रतीत होता है।

बहुपित्ता कामला :-

पित्त पाण्डु जनित कामला (Haemolytic Jaundice.)

पित्त पाण्डु में तीक्ष्ण उष्ण गुण आहार विहार औषधि आदि का सेवन किया जाय तो रक्त के पचन की अधिकता से पाण्डुता के साथ त्वचा में पीलापन भी झलकने लगता है। इसे बहुपित्ता कामला (Haemolytic Jaundice) कहा जाता है। इसमें यकृत रुग्ण नहीं होता। प्लीहा बढ़ी हुई हो सकती है। मूत्र में Urobilin अधिक होता है एवं वह पीला होता है।

(च०।चि०।१६।३४)

पाण्डु रोग चिकित्सा :-

वातिक पाण्डु चिकित्सा :-

वात प्रधान पाण्डु रोगों में जिसमें रक्त निर्माण [illegible] कर्म मन्द होता है पहले घृत पान द्वारा शरीर का स्नेहन [illegible] कराकर ऊपर तथा नीचे से [illegible] मृदु शोधन करना चाहिये अर्थात् वमन और विरेचन कराना चाहिये। ... ...

जिससे रक्त निर्माण को मंद कर देने वाले विष द्रव्य या दोष का शोधन हो जाय तथा रोगी निर्बल भी न हो । एतदर्थ दूध या घृत के साथ हरितकी चूर्ण का या आरग्वधादि क्वाथ या किसी मृदु रेचक औषधि का प्रयोग कुछ काल करना चाहिये । गोमूत्र से भावित हरीतकी चूर्ण के प्रयोग से वातिक पाण्डु में विशेष लाभ प्रतीत होता है । रोगी निर्बल न हो इसके लिये दूध, चावल, या किसी दाल के यूष या मांस रस के साथ रोटी या चावल का आहार देना चाहिये । शरीर शोधन के बाद उसकी शक्ति को बढ़ाने के लिये दूध, तक्र, घृत आदि उत्तम आहार दशमूलारिष्ट तथा बहुत बार गो मूत्र से भावित किये हुये या गोमूत्र में पकाये हुये मण्डूरया पुनर्नवा मण्डूर वटक या लोह भस्म को दूध के साथ कुछ महीनों तक प्रयोग जारी रखना चाहिये । चरक ने जीवनीय घृत का वात प्रधान पाण्डु रोग के लिये विधान किया प्रतीत होता है । लोहे की न्यूनता से होने वाले वातिक पाण्डु के लिये नवायस लौह, योगराज, लोहासव आदि का प्रयोग करना चाहिये ।

पित पाण्डु की चिकित्सा :-

पित्त पाण्डु तथा बहु पित्ता कामला में त्रिवृत तथा खाण्ड के शर्बत के द्वारा या त्रिफला का या कटुकी का ३ से ६ माशे की मात्रा में कुछ काल प्रयोग करके शरीर का शोधन करना चाहिये । अथवा फल, त्रिकादि क्वाथ (त्रिफला, गुडुचि, वासा, कटुकी, चिरायता, निम्ब) मधु के साथ पिलाते रहना चाहिये । शरीर शोधन के साथ साथ या उसके बाद गोमूत्र भावित मण्डूर का मधु से या लोह भस्म-नवायस लोह या योगराज (शिलाजीत, रोप्य माक्षिक, स्वर्ण माक्षिक ५-५, खाण्ड ८, त्रिफला, त्रिकटु, चित्रक, विडंग १-१ भाग) या लोहासव, त्रिफलासव, उशीरासव, आमलक्यासव, तिक्तघृत आदि किसी पित्त [redacted] शामक औषधि का प्रयोग करना चाहिये ।

श्लैष्मिक पाण्डु :-

श्लैष्मिक पाण्डु में भी पाण्डु कारक विष या दोष का शोधन करने के लिये शरीर का कटुकी क्वाथ से शोधन करना चाहिये तथा पाचक अग्नि को बढ़ाना चाहिये । यकृद्रोग की निवृत्ति के लिये गोमुत्र से भावित हरितकी द्वारा शोधन करना ठीक है । इसके साथ साथ गोमूत्र भावित मण्डूर या गोमूत्र साधित पंचामृत लोह मण्डूर (लोह-ताम्र-अभ्रक-गन्धक-पारद-त्रिफला-विडंग-चित्रक-दो हल्दी, दो जीरे, अजवायन,

मोथा, पुष्कर, कचूर, चव्य, चिरायता, धनिया १-१, मण्डूर सबसे आधा, जिसे ४ गुणा गोमूत्र, ८ गुणा पुनर्नवा क्वाथ में पका के चूर्ण मिलायें) या पुनर्नवा मण्डूर का कुछ काल निरन्तर प्रयोग करना चाहिये। इस प्रकार वात प्रधान पाण्डु रोगी को लोहयुक्त स्निग्ध तथा पोषक चिकित्सा से, पित्त प्रधान पाण्डु रोगी को लोहयुक्त शीत चिकित्सा से तथा कफ पाण्डु रोगी को लोह युक्त रुक्ष तथा उष्ण चिकित्सा से लाभ होता है । (सु०।उ०।४४)

श्वेत पाण्डु, दीर्घपाण्डु, श्वेताणु अतिवृद्धि Leukaemia:-

यह एक घातक पाण्डु रोग है जिसमें विकृत रुप या अपूर्ण परिणत श्वेताणु रक्त में अत्यधिक बढ़ जाते हैं। साथ ही श्वेताणुओं को उत्पन्न करने वाले अवयवों अर्थात् मज्जा में तथा प्लीहा और लसीका ग्रन्थियों में विद्यमान लसीका सम्बन्धी अवयव में भी अतिवृद्धि (Hyperplasia) हो जाती है । [illegible]

एक्स-रेज़ नामक किरणों या परमाणु बम्ब की किरणों के शरीर पर दुष्प्रभाव से रक्त निर्माण करने वाली मज्जा में घातक (Malignant) अति वृद्धि होती देखी गई है । इस रोग में यह अतिवृद्धि होती है वह किस कारण से होती है इसका अभी तक निर्णय नहीं हो पाया ।

श्वेत पाण्डु, श्वेताणु अतिवृद्धि का रोग चिरस्थायी तथा तीव्र इन दो रुपों में पाया जाता है तथा बहुधा तो यह मज्जा में अतिवृद्धि से होता है, अर्थात् Myeloid या granulocytic Leukaemia के रुप में होता है । कभी कभी लसीका सम्बन्धी अवयव में अतिवृद्धि से भी होता है, अर्थात् Lymphatic Leukaemia के रुप में होता है ।

चिरस्थायी मज्जा सम्बन्धी श्वेताणु अतिवृद्धि Chronic Myeloid Leukaemia:- इस रोग में मज्जा के स्थान पर Myelocytes, बहुत आ जाते हैं + उनके साथ Myeloblasts भी बहुत होते हैं । रक्त में दाने दार श्वेत कण (Granulocytes) बहुत अधिक बढ़े हुए होते हैं, रक्त के प्रति क्युबिक मिलिमीटर में ५० हजार से ५ लाख तक हो सकते हैं + जिनमें से ४० प्र०श० के लगभग तो Myelocytes होते हैं + Polymorphonuclear सेल ४० प्र०श० के लगभग होते + Eosinophils ५ प्र०श० के लगभग होते हैं । मज्जा में रक्त निर्माण करने वाले भाग के कम हो जाने से रक्त कणों की संख्या प्रतिक्युबिक मिलिमीटर में ३ से ५ मिलियन होती है । हीमोग्लोबिन ५० प्रतिशतक

Colour index 2' होता है

(१०० मिलिलिटर में ७.४ ग्राम) हो जाता है। रक्त कणों के देखने से उनमें Anisocytosis, Polychromasia तथा Normoblasts भी पाये जाते हैं। Platelets भी घटे हुए होते हैं। प्लीहा में Malpighian Bodies के स्थानों पर मज्जा सम्बन्धी (Myeloid) सेलों के बहुत बढ़ जाने से वह आकार में बड़ी हो जाती एवं कुछ कठोर अनुभव होती हैं।

लक्षण :-

यह रोग ३० से ५० वर्ष की आयु में अर्थात् मध्यमायु में पाया जाता है। रक्त निर्माण के मन्द हो जाने से पहले पहल बढ़ती हुई कृशता पाण्डुता, अशक्ति, शीघ्र थक जाने, श्वास चढ़ जाने, हृदय कम्प हो जाने, अग्नि के मन्द हो जाने, के लक्षण होते हैं अर्थात् Hypochromic किस्म के पाण्डु के लक्षण होते हैं। महीनों बाद प्लीहा के अन्दर Myeloid सेलों की अतिवृद्धि से जब वह बड़ी हो जाती है और उसके कारण पेट उभरकर बड़ा हो जाता है तब इस रोग का सन्देह होता है। तब रोगी में बीच बीच में उतर जाने वाला या कम हो जाने वाला ज्वर भी पाया जाता है जो १०१ डिग्री तक पहुंच जाता है। शरीर में धातुपाक (Metabolism) के बढ़ जाने से यह ज्वर होता है। इससे स्वेद के होने तथा कृशता के बढ़ते जाने के लक्षण होते हैं। इन मज्जा सम्बंधी (Myeloid) सेलों की श्रवण नाड़ी या अन्त:कर्ण में वृद्धि (Infiltration) हो जाने से बधिरता का लक्षण तथा नेत्र पश्चिम पटल (Retina) में वृद्धि होने से दृष्टि नाश का लक्षण हो सकता है। इस रोग में मज्जा के अन्दर चक्रकणों (Platelets) की उत्पत्ति के कम हो जाने से नासिका, त्वचा, गर्भाशय, वृक्क, आंत, आदि कहीं से रक्त स्राव होने लगता है। इस प्रकार पाण्डुता ज्वर और रक्तस्राव के लक्षणों तथा रक्त में आदिम श्वेत कणों की अतिवृद्धि को देखकर इस रोग का सन्देह हो जाता है।

अन्त में अशक्ति के बढ़ते जाने से या किसी आभ्यन्तर अंग में रक्तस्राव हो जाने से ३ वर्ष तक मृत्यु हो जाती है।

शीघ्रमारी पाण्डु या तीव्र मज्जा सम्बन्धी श्वेताणु अतिवृद्धि :(Acute-Myeloid Leukaemia):- Granulocytic

तीव्र रूप में यह रोग नवयुवावस्था में अर्थात् २० वर्ष की आयु के नीचे के व्यक्तियों में होता है तथा एक तीव्र रूप के

Influenza के रूप में आरम्भ होता है। साथ ही गल शोथ और कभी कभी मुख में व्रण भाव के लक्षण होते हैं। दन्त मांस में या गले में मृत्यु- Necrosis - का लक्षण भी हो सकता है। रोगी शीघ्र शीघ्र पाण्डुर होता जाता है। या नासिका गर्भाशय, त्वचा आदि से दीर्घ रक्तस्राव होता है। कुछ एक महीनों के अन्दर अन्दर ही पूय भाव से या अशक्ति से या किसी आभ्यन्तर अंग में रक्त स्राव से मृत्यु हो जाती है। रक्त की परीक्षा करने से इसमें भी श्वेत कण प्रति क्यूबिक मिलिमीटर में २० हजार के ऊपर होते हैं जिनमें Myelocytes. तथा Myeloblasts ६० प्र०श० से अधिक होते हैं।

जीर्ण लसीका सम्बन्धी अति श्वेताणु वृद्धि :(Chronic Lymphocytic Leukaemia):-

६० वर्ष के लगभग बड़ी आयु के पुरुषों में कभी कभी उनके रक्त के अन्दर Lymphocytes बहुत अधिक बढ़ जाते हैं तथा उनके लसीका सम्बन्धी अवयवों में अतिवृद्धि का लक्षण भी पाया जाता है। विशेषत: लसीका ग्रन्थियां स्थूल और स्पर्श में कठोर हो जाती हैं जिनको ग्रीवा, कक्षा तथा वंक्षण में अनुभव किया जा सकता है। इनमें स्पर्शाक्षमता नहीं होती। गले, टान्सिल, आंत आदि के लसीका सम्बन्धी अवयवों में भी अति वृद्धि होती है। यकृत् तथा प्लीहा में भी व इसी कारण कुछ वृद्धि होती है। रक्त में रक्त कण घट जाते हैं। श्वेत कण प्रति क्यूबिक मिलिमीटर में कई हजार होते जिनमें से Lymphocytes. ६०-६० प्र०श० होते हैं। यह रोग भी अज्ञात रूप में आरम्भ होता है। पाण्डुता, अशक्ति, बढ़ती हुई कृशता, लसीका ग्रन्थियों में तथा प्लीहा में और यकृत् में वृद्धि के लक्षण दो तीन वर्ष तक रहते हैं। अन्त में अशक्ति पूय भाव (Sepsis) रक्त स्राव आदि किसी उपद्रव से मृत्यु होती है।

चिकित्सा :-

इस रोग की सन्तोषजनक चिकित्सा नहीं है।

चिरस्थायी मज्जा सम्बन्धी श्वेताणु अति वृद्धि (Ch.Myeloid Leukaemia). के लिये...

(१) Busulfan (Myleran): ४-६ मिलि०मात्रा में प्रतिदिन ६ मास तक देने से अपूर्ण परिणत श्वेत कण मर जाते हैं। प्लीहा घट जाती है। जब इनकी संख्या ५० हजार प्रति क्यू०मि०मी० आ जाय

तब मात्रा ५ मिलि० प्रति दूसरे दिन दी जाती है । इसके साथ साथ लोहे का प्रयोग भी किया जाता है ।

Demecolcine(Colcemid Ciba) पहले १ मिलि० मात्रा के दिन में तीन बार देने और फिर २ मिलि० के ३ बार देने से Ch. Myeloid Leukaemia में बढ़े हुए सेल कम हो जाते हैं । इनके कम हो जाने पर इसकी चालू मात्रा प्रतिदिन १-५ मिलि० कर दी जाती है ।

लसीका सम्बन्धी श्वेताणु वृद्धि Ch.Lymphatic-Leukaemia:- में :- Chlorambucil (Leukeran) २-१२ मिलि० दैनिक मात्रा में १½ महीने तक दिया जाता है फिर केवल २ मिलि० मात्रा में दिया जाता है ।

तीव्र रोग (Acute Leukaemia) में Mercaptopurine (Purinethol) को प्रति किलोग्राम भार के पीछे २½ मिलि० दैनिक मात्रा में मुख द्वारा दिया जाता है । अर्थात् बालक को २०० मिलि०, युवक को ३०० मिलि० मात्रा में दी जाती है । बीच बीच में रक्त में श्वेताणुओं की परीक्षा की जाती है । जब इस औषधि से अन्नारुचि, वमन होने की प्रवृत्ति होने लगे, औषधि बन्द कर देनी चाहिये अथवा जब श्वेताणुओं की संख्या कम होने लग जाय तब मात्रा ५० मिलि० दैनिक कर देनी चाहिये । उनके १० हजार के लगभग आ जाने पर औषधि बन्द कर दी जाती है ।

रक्त स्राव :- Purpura

रक्त के जम जाने, स्कन्दित होने (Coagulation) की प्रक्रिया :-

१.. प्लाज़्मा में कैल्सियम होता है । जो रक्त के जमने के लिये आवश्यक है । उसे Oxalate या Citrate के द्वारा पृथक कर सकते हैं

२.. प्लाज़्मा में Prothrombin तथा Fibrinogen दोनों Globulins परस्पर मिले हुये रहते हैं जिनमें से Prothrombin. को पहले प्लाज़्मा में Oxalate और फिर Acetone डालकर पृथक किया जा सकता है । इसी प्रकार रक्त में Oxalate डालकर और फिर Centrifuge के द्वारा रक्त कणों के दूर हो जाने पर उसमें Ammonium Sulphate डाल देवें तो उसमें Fibrinogen Globulin पृथक हो जाता है ।

३.. रक्त के जम जाने के बाद बचे हुये Serum में से एक पदार्थ Thrombin पृथक किया जा सकता है ।

४.. इस Thrombin को यदि Fibrinogen में मिलाया जाय तो वह Fibrin या एक स्कंद या रक्त खण्ड (Thrombus) बन जाता है।

५.. Oxalate मिश्रित प्लाज़्मा को Centrifuge करने पर नीचे प्राप्त हुये Precipitate में एक पदार्थ होता है जिसे Thromboplastin. (Thrombokinase) कहते हैं। इसे Prothrombin में मिलाया जाय तो वह Thrombin में परिवर्तित हो जाता है। शरीर के किसी अवयव से मिले विशेषत: Platelets से उत्पन्न Extract को रक्त में मिलाया जाय तो उसका Prothrombin. शीघ्र Thrombin में परिवर्तित हो जाता है और वह फिर रक्त के (घुलनशील) Fibrinogen को (अघुलनशील) Fibrin में परिवर्तित करने का कार्य करता है।

जब शस्त्र या आघात के लगने से शरीर की एक रक्त वाहिनी क्षत हो जाती है अर्थात् उसकी दीवार में छिद्र हो जाता है तो रक्त के अन्दर स्वयमेव ही इसे भरने की एक प्रक्रिया होने लगती है। पहले तो वहां के पृष्ठ के विषम हो जाने तथा वहां पर रक्त गति के कुछ मन्द हो जाने से १०-३० सेकन्ड के अन्दर अन्दर Platelets बहुत अधिक मात्रा में जमा होने लगते हैं। उनमें से कोई Vasotonic द्रव्य निकलता है, जिससे रक्तवाहिनी की Smooth Muscle संकुचित हो जाती है एवं उसका छिद्र छोटा हो जाता है। दूसरे वहां पर भारी संख्या में एकत्रित हुए Platelets के Cytoplasm में से Pseudopodia निकल कर छिद्र के किनारों से चिपक जाते हैं तथा प्लेटलेट्स परस्पर एक दूसरे से भी चिपक जाते हैं। इनमें से (आघात पश्चात्) निकले हुये Thromboplastin के द्वारा वहां एकत्रित हुए रक्त के Prothrombin के Molecules में ऐसा परिवर्तन होता है कि उनसे एक सर्वथा नया पदार्थ Thrombin उत्पन्न हो जाता है। इसके उत्पन्न हो जाने पर Platelets में से और अधिक Thrombiaplasting उत्पन्न होता है और इसके परिणाम रूप और अधिक Thrombin उत्पन्न होता है जो रक्त में घुले हुये Fibrinogen Globulin को Fibrin नामक जाल के ढेर में परिवर्तित कर देता है। इस प्रकार Platelets और Fibrin इन दो के द्वारा एक डाट सा बन जाता है जो रक्त वाहिनी में हुये छिद्र को भर लेता है। फिर यह डाट(Clot) संकुचित(Contracted) होने लगता है अर्थात् इनमें से Serum पृथक हो जाता है और इसके संकुचित होने से छिद्र के किनारे समीप समीप आ जाते हैं और फिर यह डाट

रक्तवाहिनी की दीवार का ही एक भाग बन जाता है ।

रक्त के ठीक ठीक जमने के लिये रक्त में जिन जिन द्रव्यों का होना आवश्यक है उनमें से एक तो Calcium (Factor 1) है जो १०० सी०सी० में ९.९ - १०.९ मिलि० होता है । जिसके विषय में १८९० में पता लग चुका था । उसके बाद १९०५ में Morawitz ने रक्त के जमने की प्रक्रिया पर बहुत प्रकाश डाला । उसने बताया कि Thromboplastin (Factor 2) रक्त के अन्दर विद्यमान Prothrombin (Factor 3) को Thrombin में परिवर्तित कर देता है तथा इस परिवर्तन के लिये रक्त में Calcium का होना आवश्यक है फिर यह Thrombin जो एक Enzyme है Fibrinogen (Factor-4) को Fibrin (Blood Clot) में बदलने का काम करता है । Prothrombin की उत्पत्ति यकृत में विटामिन "के" के द्वारा होती है । clotting = Prothrombin + Thromboplastin + Calcium ions → Thrombin / Thrombin + Fibrinogen → Fibrin

१९४७ में Quick तथा Brink House ने Thromboplastin की उत्पत्ति पर विशेष प्रकाश डालते हुये बताया कि रक्त में एक और Globulin है जिसे उन्होंने Antihaemophilic Globulin (A.H.G. या Thromboplastinogen Factor 8) का नाम दिया । इस पर Platelets से निकले किसी द्रव्य (Thromboplastinogenase) का प्रभाव होने से Thromboplastin (Thrombokinqse) उत्पन्न होता है । अर्थात् रक्त के जमने के लिये Platelets के अतिरिक्त रक्त में एक Antihaemophilic-Globulin का होना अत्यावश्यक है ।

इसके बाद Plasma में और Serum में विद्यमान कुछ और तत्वों का भी पता लगा कि जो रक्त के जमने में सहायक होते हैं । इनमें से एक को जो प्लाज़्मा में रहता है और उसके जम जाने के बाद नष्ट हो जाता है Plasma Prothrombin Accelerator या Conversion Factor 5 कहते हैं । यह नश्वर या Labile है और बाद में बचे Serum में नहीं रहता । इसकी अनुपस्थिति में भी Prothrombin का Thrombin में परिवर्तन विलम्ब से होता है । दूसरा एक पदार्थ जो प्लाज़्मा के जम जाने के बाद सीरम में रहता है तथा प्लाज़्मा में विद्यमान अपने किसी पूर्व रूप (Precursor) से उत्पन्न होता है तथा सीरम के बहुत काल तक रखने पर भी नष्ट नहीं होता अर्थात् स्थिर (Stable) होता है, उसे Serum Prothrombin Accelerator या Converter Factor 7 कहा जाता है । (एक Serum Accelerator Factor 6) कहा गया था उसे अब ह नहीं माना

जाता) । ये दोनों फेक्टर Prothrombin से Thrombin की उत्पत्ति में सहायक होते हैं । इन दो Factors तथा Prothrombin की न्यूनता में "Prothrombin काल" दीर्घ हो जाता है ।

१९५३ में Biggs, Douglas तथा Mascfurlane ने बताया कि रक्त में Thromboplastin की ठीक ठीक उत्पत्ति के लिये तथा उसके द्वारा उसके जमने के लिये Platelets, Antihaemophilic-Globulin, Factor 5, Factor 7 तथा Calcium के अतिरिक्त एक और आवश्यक तत्व भी होता है जिसे उसने Christmas Factor (Factor 9) का नाम दिया । यह रचना में तो Factor 7 के सदृश तथा कार्य में Antihaemophilic Globulin की तरह का होता है । इसकी उत्पत्ति क्योंकि कुछ देर में होती है अर्थात ३ से ८ मिनट में होती है । इसीलिये नार्मल रक्त का जमने का समय कुछ लम्बा होता है, जबकि प्लाज़्मा में Stock Tissue-Thromboplastin मिलने से वह इस समय से पहले ही जम जाता है ।

Vitamin K. के देने से Prothrombin और सम्भवत: Serum Prothrombin Accelerator Factor 7 की वृद्धि होकर रक्त जमने (Coagulation) की प्रक्रिया तीव्रतर हो जाती है । इसके विपरीत Dicoumarin तथा Tromexan Heparin किस्म की औषधियों के देने से Factor 7 की क्रिया मन्द हो जाती है जिससे Thrombin की उत्पत्ति कम होती एवं रक्त में Thrombus की उत्पत्ति मन्दता से होती है ।

१. Vitamin "K" या Prothrombin की न्यूनता से होने वाला रक्तस्राव Haemorrhagic Disease Due to Hypoprothrombinaemia:

(क) नव-जात शिशु रक्त पित :- Purpura Neonatorum, Melaena Neonatorum, Haemorrhagic Disease of the New Born. Primary Hypoprothrombinaemia.

२००-३०० नवजात शिशुओं में से एक में, अर्थात् कभी कभी, जन्म के दूसरे तीसरे दिन रक्तातिसार हो जाता है अथवा उसकी नाभि में से रक्त स्राव हो जाता है । माता का दूध पीने के बाद अर्थात् जन्म के तीन चार दिन बाद फिर यह रोग नहीं होता । माता में Vitamin "K" की न्यूनता के कारण उसके शिशु के यकृत में Prothrombin की अति न्यूनता हो जाती है । आंत में विद्यमान Saprophytes के द्वारा Vitamin "K" उत्पन्न होता है । नवजात शिशु की आंत में ये जीवाणु भी उत्पन्न नहीं हुये होते । उसे यह रोग न हो, इस उद्देश्य से प्रसव

के आरम्भ में माता को २५ मिलिग्राम के लगभग Vit.K.(Menaphthone) मुख द्वारा दे दिया जाता है।

(ख) Vitamin "K" या Prothrombin की न्यूनता से होने वाला रक्तस्राव Acquired Hypoprothrombinaemia:- जीर्ण ग्रहणी रोग, जीर्ण त्रिदोषातिसार (Ulcerative Colitis) में Vitamin "K" की न्यूनता का हो जाना स्वाभाविक है जिससे यकृत में Prothrombin की उत्पत्ति कम होती है। इसी प्रकार पीलिया (Infective Hepatitis) तथा जीर्ण यकृद्रोग (Hepatic Cirrhosis) में जब यकृत के सैल रुग्ण होते हैं, Prothrombin का निर्माण ही कम होता है, Vitamin "K" स्नेह में घुलने वाला पदार्थ है और स्नेह के पूर्ण विलयन के लिये आंत में पित्त का उचित मात्रा में होना आवश्यक है इसीलिये यकृद्रोग में जब पित्त आंत में कम पहुंचता है Vitamin "K" का विलयन भी कम हो जाता है। इसी प्रकार Decoumarol सदृश Anticoagulant औषधियों के अति प्रयोग से भी शरीर में Prothrombin की न्यूनता होकर रक्त स्राव हो सकता है। इन औषधियों के कारण पहले पहल मूत्र में रक्त आता है। अत: इनके प्रयोग के समय मूत्र परीक्षा करनी आवश्यक होती है।

जब शरीर में Vitamin "K" की न्यूनता हो यकृत में Prothrombin कम बनता हो, तब Coagulation या clotting Time तथा Prothrombin Time दोनों लम्बे हो जाते हैं।

~~Coagulation Time :- जानने के लिये रक्त वाहिनी में से सीधे रक्त को एक Watch Glass में ले लिया जाता है। पहले तो यह रक्त तरल रहता अर्थात् हिलता जुलता है। ३ से १० मिनट में यह जम जाता है और फिर हिलना जुलना बन्द कर देता है।~~ Vitamin "K" की न्यूनता में यह समय दीर्घ हो जाता है।

Prothrombin Time:- रक्त लेकर उसे ३७ सैन्टीग्रेड पर रखकर उसमें Standard Solution of Oxalate मिलाया जाता है, जिससे रक्त का Calcium पृथक हो जाता है (Decalcification)। अब पहले उसमें Tissue Extract अर्थात् Thromboplastin मिलाया जाता है और उसके बाद उसमें Calcium के मिलाने के बारह सैकिन्ड में रक्त जम जाता है। जब रक्त में Prothrombin कम होता अर्थात् Vitamin"K" या यकृत के सैलों में निर्बलता होती है तो यह Prothrombin Time १२ सैकिन्ड से लम्बा हो जाता है।

२.. Platelets की न्यूनता से होने वाला रक्त स्राव :-

Platelets की सहज न्यूनता से बहुत कम अवस्थाओं में होने वाला रक्त स्राव Primary या Essential Thrombocytopenic Purpura या P.Haemorrhagica:

किसी किसी बाल्यावस्था व नव-युवावस्था के व्यक्ति में अधिकत: स्त्री में Platelets की सहज न्यूनता के कारण त्वचा में या नाक, मुख, आमाशय, पेट, गर्भाशय, मूत्र मार्ग आदि किसी द्वार से रक्त स्राव हो जाता है और इसी प्रकार समय समय पर होता रहता है अथवा उसके घात हुये प्रदेश से रक्त स्राव देर तक जारी रहता है अर्थात् Bleeding Time जो साधारणत: १-४ मिनट का होता है इनमें अधिक लम्बा होता है सिरा में उत्पन्न छेद को पहले प्लेटलेट भरते हैं, । उनकी कमी में रक्त बहता रहता है । रक्त की परीक्षा करने पर इनके रक्त में Platelets एक क्युबिक मिली-मीटर में २ लाख से ६ लाख के स्थान पर ६० हजार के लगभग या इससे भी कम पाये जाते हैं जिससे इनमें रक्त वाहिनियों में उत्पन्न हुये छिद्र को भरने की शक्ति कम होती है । प्लेटलेट्स में से उनमें Thrombo-Plastin की उत्पत्ति होकर रक्त में जमने या Clot बनने की प्रक्रिया तो ठीक होती है पर Platelets की संख्या के कम हो जाने पर यह छिद्र भलीप्रकार बन्द नहीं हो पाता, Colt में सुकड़ जाने का गुण भी नहीं होता । जिससे इसे रोगी में यद्यपि जमने का समय (Coagulation Time) तो नार्मल अर्थात् ५ से १० मिनट का होता है पर छिद्र के शीघ्र बन्दनहोने से Bleeding Time लम्बा होता है । टांगों पर जहां रक्त वाहिनियों के अन्दर रक्त का दबाव-अधिक रहता या जहां पर बाह्य आघातों के लगने का अवसर अधिक रहता है, लाल चकते (Petechiae या Ecchymoses). या छोटे रक्त अर्बुद (Haematoma) निकलते रहते हैं अथवा किसी एक द्वार से समय समय पर रक्त स्राव होता रहता है । रक्त स्राव किसी प्रकार की चोट पहुंचने से होता है । या बहुधा किसी प्रत्यक्ष चोट के बिना भी रक्त स्राव होता है । प्रतिक्युबिक मिलिमीटर रक्त में ४० हजार की इनकी संख्या के हो जाने पर रोग प्रकट हो जाया करता है । यह रोग तीव्र रूप में कम, चिरस्थायी रूप में अधिक होता है । तीव्र रूप में जब होता है तब नासिका या गर्भाशय से सहसा रक्त स्राव होने लगता है । और किसी संक्रामक रोग के वेग के होने पर होता है । चिरस्थायी रूप में रक्त स्राव विशेष नहीं होता परन्तु रक्तवर्ण चकते

त्वचा पर विशेष निकलते हैं । बाहु पर शिराओं को २ मिनट के लिये दबाकर अवरुद्ध कर दिया जाय तो त्वचा पर लाल चकत्ते प्रकट हो जाते हैं । ज्यों ज्यों रोगी बड़ा होता है, रोग हलका पड़ता जाता है । इस रोग के-जिसका पता पहले पहल १९१० में Duke ने लगाया-कारण के विषय में एक मत तो यह है कि मज्जा में Platelets का विकास ठीक ठीक नहीं होता जिससे वहां Megakaryocytes और उसके भी पूर्व रुप Megakaryoblasts की संख्या बहुत बढ़ जाती है । अपूर्ण विकसित Platelets रक्त में संचार कर जाते हैं । उनमें कोई बहुत बड़े कोई बहुत छोटे होते हैं और जैसे प्लीहा यकृत मज्जा आदि के Reticul-oendothelial Cells के द्वारा अपूर्ण परिणत रक्तकणों (Mega-locytes) के अति मात्रा में नष्ट होने से अर्थात् Hypersplenism के कारण Macrocytic Anaemia होता है + वैसे ही प्लीहा के इस रोग के कारण शरीर में Platelets के अधिक मात्रा में नष्ट होते रहने से या Fragile होने से Thrombocytopenic Purpura का रोग हो जाता है अर्थात् या तो मज्जा में इनका विकास ठीक न होने से ये प्लीहा में नष्ट होते हैं या प्लीहा के किसी दोष से ये अधिक नष्ट होते हैं, + कुछ एक में वह बढ़ी हुई भी होती है । देखा गया है कि पूर्ण परिणत हुये छोटे Platelets से जैसा Thrombus बनता है वैसा वह आकार में बड़े दीखने वाले अविकसित Platelets के द्वारा नहीं बनता तथा Splenectomy का शल्य कर्म हो जाने पर ये भंगुर प्लेटलेट फिर कम नहीं होते । इस प्रकार Platelets की न्यूनता का एक कारण तो अस्थि मज्जा में Megakeryocytes का जो इनके प्रारम्भिक रुप हैं होते हैं ठीक ठीक विकसित न होना है और फिर इनका प्लीहा में नष्ट होना है । रक्त कणों की ठीक उत्पत्ति न होने वाले पाण्डु रोग में भी प्लेटलेट्स की कमी होती है तो भी लगभग तीन चौथाई रोगियों में उनके रक्त में प्लेटलेट्स की कमी का कारण उनके प्लाज़मा में एक प्लेटलेट विरोधी या Antiplatelet पदार्थ या Platelet ~~xxxx~~ Agglutinin का होना है, वह इनका विनाशक होता है । उसकी उत्पत्ति किसी संक्रामक रोग ~~के वश कारण उत्पन्न~~ ~~Antigen~~ या किसी औषधि विशेष के कारण उत्पन्न Antigen के विरोध में होती है । फिर दोनों की परस्पर प्रतिक्रिया से Platelets अधिक मात्रा में नष्ट हो जाते हैं । इनके प्लाज़मा को स्वस्थ व्यक्ति के रक्त में डालने से उसे भी रक्त पित्त या Purpura हो सकता है । इस प्रकार औषधियां और किसी संक्रामक रोग के कारण होने वाले रक्त पित्त का कारण भी Platelet ---

Agglutinins होते हैं । ऐसे रक्त रोगों में जैसे मज्जा रोग जनित पाण्डु (Aplastic Anaemia) Reticulocytosis, Leukoemia में भी बहुधा Platelet Aggulitinin के कारण रक्त पित्त पाया गया है । Lupus Erythematosis में भी इन्हीं के कारण रक्त स्राव हो सकता है ।

भेदक लक्षण :-

प्लेटलेट्स की न्यूनता के कारण (Thrombocytoplenic) होने वाले चकत्ते छोटे, नीले या भूरे से रंग के होते तथा वेदना जनक नहीं होते । आगे कहे जाने वाले सिरा नैर्बल्य जनित (Anaphylactoid) चकत्ते बड़े, गाढ़े, लाल रंग के, तथा वेदना जनक होते हैं । यदि प्लीहा कुछ बढ़ी हुई लगे तो Reticulosis आदि रक्त रोगों के कारण रक्त पित्त है ऐसा समझना चाहिये । प्लेटलेट्स की न्यूनता से रक्त पित्त हो तो Bleeding Time लम्बा होता है । रक्त वाहिनियों की निर्बलता के कारण रक्त स्राव हो तो Hess's Test करें । अर्थात् कोहणी से २ इंच नीचे अग्रबाहु के अग्रिम पृष्ठ पर १ इंच व्यास का वृत्त खींचें फिर Sphygmomanometer से Systolic तथा Diastolic बिन्दुओं के मध्य बिन्दु पर १५ मिनट तक दबाव रखें और ५ मिनट बाद वृत्त में चकत्तों की संख्या गिनें, ये २० से अधिक हों तो इस रोग का सन्देह करना चाहिये ।

साध्यासाध्य :-

Thrombocytopenia तीव्र रूप में लड़कियों व बालकों में हो तो बहुधा ठीक हो जाता है । युवावस्था के बाद यह रोग लगभग ५० % में ठीक हो जाता है ।

३.. प्लाज़्मा में Antihaemophilic Globulin की न्यूनता से उत्पन्न होने वाला रक्त स्राव :-

पैत्तिक रक्त पित्त :- Haemophilia:

सहज रक्त स्राव का रोग किसी किसी परिवार में माता के द्वारा पैतृक परम्परा से आता है । अर्थात् इन परिवारों के व्यक्तियों के रक्त में स्वभावत: Antihaemophilic-Globulin की न्यूनता होती है जिससे Platelets के उचित मात्रा में होने पर भी इनके रक्त में Thromboplastin की उत्पत्ति उचित मात्रा में नहीं होती ।

सौभाग्य से यह रोग बहुत कम होता है । जब होता है तो बालक में दूसरे वर्ष के अन्दर ही इसके लक्षण प्रकट हो जाते हैं।

अर्थात् उसके किसी अंग पर स्वल्प आघात लगने पर भी त्वचा के अन्दर रक्त स्राव होकर Haematoma बन जाता या लाल रंग का चकत्ता बन जाता है । बालक के रिड़ने पर उसके गोड़े भीतर में रक्त स्राव हो जाने के कारण सूज जाते हैं, जो रक्त विलीन नहीं होता उससे Synonial Membrane मोटी हो जाती है । त्वचा में क्षत होने पर भी वहां से अधिक रक्तस्राव रहता है । रोगी के रक्त में जमने की प्रक्रिया अति मन्द रूप में होती है अर्थात् उसके रक्त का Coagulation Time ५-७ गुणा लम्बा होता है परन्तु यदि उसे सुई चुभोई जाय तो Platelets के साधारण मात्रा में होने के कारण वहां का छिद्र तो बन्द हो जाता है अर्थात् Bleeding-Time. तो लगभग साधारण या कुछ लम्बा होता है पर Coagulation Time. असाधारण तौर से लम्बा होता है । उस परिवार के बालकों में पहले भी इस रोग के होने का इतिवृत्त होता है ।

४.. सिरा नैर्बल्य जनित रक्त स्राव :- Vascular Purpura, Capillary Purpura, Haemorrhagic Capillary Toxicosis, Anaphylactoid Purpura, Allergic Purpura:

बालकों और नवयुवकों में एक रक्त स्राव पाया जाता है जो उनकी सूक्ष्म सिराओं (Capillaries या Endothelium) के Collagen Tissue की असहनशीलता (Hypersensitivity एवं Permeability) के बढ़ जाने के कारण होता है न कि रक्त में किसी कमी के कारण विटामिन 'सी' की कमी से भी इनमें निर्बलता आती है । सिराओं के Collagen Tissue को विदग्ध करने वाला पदार्थ कोई विष (Toxin) होता है अर्थात् Streptococcal, Malarial Meningococcal, enteric, Staphylococcal. या Eruptive Fever सम्बन्धी विष इस रोग का कारण हो जाते हैं। रक्त में पूय जनक जीवाणु या उनके विष हों अर्थात् तीव्र ज्वर हो तो रक्त स्राव का लक्षण हो सकता है । भोजन सम्बन्धी कोई तीक्ष्ण पदार्थ या शरीर में उत्पन्न विष (Metabolitc) या कोई तीक्ष्ण औषधि (क्विनीन, सुवर्ण Chloramphenicol) किसी व्यक्ति की सिराओं पर विष का सा प्रभाव करके रक्त स्राव का कारण हो सकती है । किसी प्रोटीन के जो रक्तवाहिनियों को सहन नहीं होता यह रक्त स्राव होता है । अतः इसे Allergic Purpura भी कहते हैं । यह रोग निम्नलिखित रूपों में देखा जाता है ।

१.. Purpura Simplex: या मृदु रक्त पित्त :-

बालक या नवयुवक को विष संचार (Toxaemia

के लक्षणों अर्थात् सिर दर्द और कुछ ज्वर के साथ शाखाओं की त्वचा में रोम कूपों के चारों ओर के प्रदेश में कुछ एक शीत पित्त सदृश रक्त वर्ण चकते निकल आते हैं। कोहणी के आसपास, निचली टांगों के अगले पृष्ठ पर, गिट्टों पर, पैरों पर, तथा बैठने के स्थान की त्वचा में, ये लाल चकते विशेषत: दीखते हैं। सिराओं में से निकले रक्त कणों के कारण ये चकते लाल होते हैं। तथा उनमें से निकले (Plasma) के कारण ये उभरे हुये भी होते हैं। इस प्रकार यह रोग एक प्रकार का शीत पित्त सदृश (Urticarial) Purpura. है जो एक महीने के लगभग रहता है। कभी कभी इस रोग के कारण हाथ, पैर, निचली टांग या चेहरे पर उदर्द का सा उभार (Angioneurotic Oedema) भी हो जाता है। इन पर दबाने से कुछ दर्द भी होता है। यह किसी जीवाणु (विशेषत: streptococci) आत्मत्यता से होता है।

Abdominal Purpura, Henoch's Purpura: आन्त्रिक रक्तस्राव :-

बालक या नवयुवक में कभी कभी त्वचा में रक्तस्राव होने के साथ साथ आमाशय तथा आंत की दीवार के किसी भाग की सिराओं से Serum तथा रक्त के श्लेष्मकला से नीचे के स्तर (Submucous) में पर्याप्त मात्रा में परिस्रुत हो जाने से उनका एक भाग मोटा और कठोर हो जाता है जिससे रोगी को पेट में भारी दर्द होती या वमन होती है या मलबन्ध या अतिसार के लक्षण हो जाते हैं जो १-२ दिन में ठीक हो जाते या १ सप्ताह के लगभग रहते हैं तथा बर्फ की टोपी रखने से जिसमें आराम प्रतीत होता है परीक्षा करने पर रोगी का पेट कठोर दीखता तथा रोगी को हलका ज्वर भी होता है। यदि शाखाओं और धड़ की त्वचा पर Purpura Simplex का लक्षण भी साथ ही हो तो इस रोग के निश्चय करने में कठिनता नहीं होती। आमाशय या आंत में हुआ रक्त स्राव जनित यह शोथ एक आध दिन में ठीक हो जाता है परन्तु इसके दुबारा होने की आशंका करनी चाहिये। बालक में बार बार ऐसा दर्द होने पर तो इस रोग का निश्चय हो जाना चाहिये। क्योंकि वर्ष में २-३ बार या अधिक बार यह होता है। इसमें रक्त का प्लाज़्मा ही निकलता है + रक्त कण कम निकलते हैं। अत: त्वचा में रक्त स्राव हो तो वह शीत पित्त की तरह का उभार होता है। उसमें लाली नहीं होती।

सन्धि में रक्त स्राव :Rheumatic Purpura,Schonlein's Purpura:-

१०-३० वर्ष के नवयुवक व्यक्ति में Purpura-Simplex के लक्षणों के साथ साथ अर्थात् टांगों पर चकते निकलने के साथ किसी बड़ी सन्धि की जैसे कोहणी या गोड़े या गिट्टे की सिराओं में से

सहसा परिस्रवण होकर सन्धि में या तो केवल Plasma या रक्त कणों से युक्त Plasma एकत्रित हो जाता है जिससे उसमें दर्द होने लगता है । एक के बाद दूसरी सन्धि में यह शोथ हो जाता है या किसी मांस पेशी में भी प्लाज़्मा होने से दर्द हो सकता है । परीक्षा करने पर सन्धि कुछ कुछ फूली हुई होती है पर रक्त वर्ण नहीं होती । ज्वर तापमान भी १०३ फा० तक हो जाता है । गला भी सूजा होता है । त्वचा में कहीं पर लाल चकते (urticaria) भी हों जैसे कि निम्न जंघा के अग्रिम पृष्ठ पर तो आम वातिक संन्धि शोथ (Rheumatic Arthritis) से इसका भेद सुगम हो जाता है । कभी कभी टांगों, पैरों, चेहरे, हाथों पर बड़े उभार भी होते हैं । इन सर्व अवस्थाओं में प्लेटलेट्स की संख्या Coagulation तथा Bleeding Time नार्मल होते हैं । यह अवस्था कई सप्ताह चलती है ।

५.. शारीरिक विष के कारण रक्त स्राव :-

जीर्ण वृक्क रोग में मूत्र विष संचार (Uraemia) के उपद्रव के रूप में रक्त वाहिनियों पर दुष्प्रभाव होकर आमाशय, आंत, मस्तिष्क आदि में रक्त स्राव हो सकता है । पहले नाक से रक्त स्राव (Epistaxis) का लक्षण होता है । मूत्र तथा रक्त की परीक्षा से वृक्क रोग होने का पता चलता है । इसी प्रकार कामला (Infective Hepatitis) में Cholaemia का रक्त वाहिनियों पर दुष्प्रभाव होकर आमाशय, आंत आदि से रक्त स्राव हो सकता है तथा त्वचा पर चकते (Petechiae) निकल सकते हैं ।

६.. उर:क्षय के कारण रक्त स्राव :-

~~Scurvy रोग में भी दन्तमांस से रक्तस्राव~~

Purpura in Pulmonary T.B. उर:क्षय रोग में शाखाओं तथा कोष्ठकी त्वचा पर रक्त वर्ण चकते कभी कभी निकलते देखे जाते हैं । क्षय विष की अत्यन्त असात्म्यतावश रक्तवाहिनियों की अन्त: कला पर उसका दुष्प्रभाव होकर यह रक्तस्राव होता लगता है ।

Scurvy रोग में भी दन्तमांस से रक्तस्राव होता है।

रक्त स्राव की चिकित्सा :-

Hypoprothrombinaemia:- में विटामिन K के अभाव या Vitamin K_1 के स्थान पर Water Soluble Synthetic Vitamin Menadione Sodium Bisulphite कैप्सूल्स में १० मिलिग्राम मात्रा में मिलता है । उदाहरणत: Synkavit (Roche) या Kapilin (Glaxo) या Synkamin (K-Vit-B.I. Vitamindark, Indopharma) १० मिलिग्राम की दैनिक मात्रा Menadione

में मुख द्वारा दिये जाते हैं। Acetomenaphthone (Kapilon. Prokayvit) B.D.H. १० मिलि० दैनिक मात्रा में मुख से दिया जाता है। ग्रहणी कामला आदि से उत्पन्न Prothrombin की न्यूनता इसके ३-४ दिन के प्रयोग से ठीक हो जाती है। यकृद्रोग जनित रक्त स्राव में ब इससे बहुधा लाभ नहीं होता। Menadione Sodium Bisulphite (Hykinone) तथा Sodium Menadione Diphosphate (Synkavit) मांस व शिरा द्वारा भी दिये जाते हैं। नवजात शिशु के रक्त स्राव के लिये Menaphthone को (Synkavit) को १ मिलिग्राम की मात्रा में मांस द्वारा या ५ मिलिग्राम मुख द्वारा ८ घन्टे के अन्दर से दो तीन बार देने से लाभ हो जाता है। Phytonadine (Mephyton) के २५-५० मिलि० मात्रा में शिरा द्वारा ५ मिनट लगा के धीरे धीरे देने से बढ़ा हुआ Prothrombin Time नार्मल हो जाता है। इसे ५ मिलि० मात्रा में मुख से देने से भी यही लाभ होता है। यह रक्त स्राव न हो इस उद्देश्य से Acetomenaphthone २५ मिलिग्राम मात्रा में माता को प्रसव से १२ से ४ घन्टे पहले दे दिया जाता है तथा नवजात शिशु को ५ मिलि० मात्रा में पहले दिन दे दिया जाता है। anticoagulant

दाद्र कण जनित रक्त स्राव अर्थात् Idiopathic Thrombocytopenic Purpura:-

autoimmune haemolytic anaemia में इसकी चिकित्सा ... अतः इसके लिये Cortisone (Corlin) के २००, ३०० मिलिग्राम या Corticotrophin के ८०,१०० मिलिग्राम या Prednisone (Delta Corlintab, Delta Cortone) के ६० मिलिग्राम दैनिक मात्रा में १५-२० दिन तक देने से बहुधा लाभ हो जाता है या Prednisolone ४० मिलि० दैनिक मात्रा में इतने ही दिन देना चाहिये। बालक के लिये २० मिलि० मात्रा दैनिक है। इनके प्रयोग से यदि तो Platelets की मात्रा बढ़ जाती है तो स्थायी लाभ हो जाता है परन्तु यदि इनके द्वारा केवल सिराओं की दुर्बलता (Fragility) ही शान्त हो तो लाभ अस्थायी होता है। इनका प्रयोग ३-४ सप्ताह तक करना पर्याप्त होता है। ... transfusion ... splenectomy ...

Anaphylactoid Purpura में Allergy कारण हो तो Adrenaline या Antihistamine Drugs (Benadryl- आदि) ५० मिलि० या Thephorin (Phenindamine tartrate) २५ मिलि० दिन में तीन बार कारण हो तो Penicillin. देने से और यदि संक्रमण या Infection -- की चिकित्सा से लाभ हो सकता है Prednisolone के 20-30 ... देने से भी लाभ होता है। ... Hydrocortisone Sodium succinate ... Prednisolone ...

Secondary Thrombocytopenia ... aplastic anaemia ... transfusion ...

antihaemophilic factor ... transfusion ... factor

पैतृक रक्त पित्त के लिये Thrombin या Adrenaline या Fibrinfoam, Osidised Cellulose (Oxycel) या Gelatin Sponge (Gelfoam) को उस स्थान पर लगा देना चाहिये। ताजे रक्त के लगाने या १० हजार में १ Vipervenom (Stypven) के लगाने से रक्त बन्द हो जाता है।

क्षाय जनित रक्त स्राव के लिये क्षाय रोग की औषधियों के साथ Prednisolone ५ मिलि० मात्रा में प्रति दिन देने से लाभ हो जाता है। (Hemostic ... Stypven ...)

रक्त स्राव की रुधिर द्वारा चिकित्सा :- Blood Transfusion:-

Haemophilia, Thrombocytopenia:- तथा Marrow Hypoplasia के कारण रक्त स्राव हो तो रोगी को शिरा द्वारा रक्त देने से लाभ हो जाता है। रक्त ऐसे व्यक्ति का लिया जाता है जिसमें फिरंग, विषम ज्वर तथा Infective Hepatitis में से कोई रोग सर्वथा न हो।

रक्त वर्गीकरण :- Blood Grouping:

१९०० में Land Steiner ने पहले पहल बतलाया कि प्रत्येक व्यक्ति का रक्त दूसरे व्यक्ति को शिरा द्वारा नहीं दिया जा सकता। इसका कारण यह है कि कुछ एक के रक्त कणों में Agglutinogens पाये जाते हैं जो A तथा B भेद से दो प्रकार के हैं। Agglutinogen A (Anti-B) तो ४० प्रतिशतक व्यक्तिओं के रक्त कणों में पाया जाता है। Agglutinogen B (Anti-A) १० प्रतिशतक के, Agglutinogen A B. दोनों, ५ प्रतिशतक के रक्त कणों में पाये जाते हैं तथा ४५ प्रतिशतक व्यक्ति ऐसे होते हैं जिनके रक्त कणों में Agglutinogen A अथवा B कोई सा भी नहीं होता (Anti A and Anti B)। इन चारों को क्रमशः A ग्रूप, B ग्रूप, A B ग्रूप, तथा ज़ीरो (0) ग्रूप, कहते हैं।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जिन ४० प्रतिशतक व्यक्तिओं के रक्त कणों में Agglutinogen A होता है उनके Serum या प्लाज़्मा में केवल Anti B Agglutinin या Beta-Agglutinin (b) ही रह सकता है। जिन १० प्रतिशतक व्यक्तिओं के रक्त कणों में Agglutinin "B" होता है उनके Serum या प्लाज़्मा में Anti "A" Agglutinin या Alpha Agglutinin (a) ही रह सकता है। जिन ५ प्रतिशतक व्यक्तिओं के रक्त कणों में Agglutinogen A तथा B दोनों होते हैं उनके Serum में Anti A Agglu

tinin (Alpha Agglutinin) तथा Anti B Agglutinin- (Beta Agglutinin) कोई भी नहीं रह सकता।

Groups के नाम,	Agglutinogen जो रक्त कणों में है,	Agglutinin जो Serum में है,	प्रतिशतक Groups
A B (१)	A तथा B	कोई भी नहीं	५
A (२)	A	Beta(Anti:B)	४१
B (३)	B	Alpha(Anti:A)	१०
O ज़ीरो (४)	कोई भी नहीं	Alpha,Beta	४५

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि यदि Agglutinogen A वाले रक्त कण किसी ऐसे व्यक्ति को दिये जायें जिसके Serum में Alpha Agglutinin या Anti A हो, तो इनमें परस्पर प्रतिक्रिया होने से अर्थात् Antigen Antibody Reaction से दिये गये रक्त कण सबके सब एक ढ़ेर सा Clump या Agglutinate होकर नष्ट हो जायेंगे ~~नष्ट~~ अर्थात् Haemolysis हो जायगा तथा रोगी को धक्का Shock पहुंचेगा। इसी प्रकार Agglutinogen B वाले रक्त कण ऐसे व्यक्तियों में जिसके Serum में Anti B या Beta Agglutinin. हो, दिये जाने पर नष्ट हो जाते हैं तथा Agglutinated. रक्त कणों के द्वारा सूक्ष्म सिराओं के बन्द हो जाने का भय रहता है। श्वास कृच्छ्रता, हृदय प्रदेश पर दर्द, नाड़ी की निर्बलता, मूत्र की कमी या मूत्राघात (Haemoglobin के Tubules में बैठ जाने से) के लक्षण हो जाते हैं।

इसलिये रक्त लेने वाले व्यक्ति को अपने समान ग्रुप वाले व्यक्ति का ही रक्त लेना चाहिये तथापि A B वर्ग का रक्त A B वर्ग के लोगों को निसंशय रूप से दिया जा सकता है। A वर्ग का रक्त अर्थात् A Agglutinogen वाला रक्त A वर्ग तथा A B वर्ग के व्यक्तियों को दिया जा सकता है। B वर्ग का अर्थात् Agglutinogen B वाला रक्त B वर्ग के तथा A B वर्ग के व्यक्तियों को दिया जा सकता है। यह ठीक है कि दिये जाने वाले A वर्ग के Serum में Anti B या Beta Agglutinin तथा दिये जाने वाले B वर्ग के Serum में Anti A या Alpha Agglutinin है तथापि रक्त लेने वाले व्यक्ति के अन्दर ये इतने हलके हो जाते हैं कि उसके रक्त कणों को ये कोई हानि नहीं पहुंचा पाते। ज़ीरो वर्ग (O) Group) के व्यक्तियों

का रक्त कि जिसमें कोई भी Agglutinogen नहीं है सभी व्यक्तियों को दिया जा सकता है। इनके रक्त के Serum में यद्यपि Anti A तथा Anti B Agglutinin होते हैं पर ये लेने वाले के रक्त में पहुंचकर इतने हलके हो जाते हैं कि उसके रक्त कणों को हानि नहीं पहुंचाते।

देने वाले :- Donors इस प्रकार A B वर्ग का रक्त A B वर्ग को।
A वर्ग का रक्त A तथा A B - वर्ग को।
B वर्ग का रक्त B तथा A B - वर्ग को।
O वर्ग का रक्त --- सबको दिया जा सकता है।

लेने वाले :- Recipients: AB वर्ग के व्यक्ति को सबका।
A वर्ग के व्यक्ति को A तथा O वर्ग का।
B वर्ग के व्यक्ति को B तथा O वर्ग का।
O वर्ग के व्यक्ति को O वर्ग का रक्त दिया जा सकता है।

Grouping: जानने की विधि :-

कोई नया व्यक्ति किस ग्रुप का है, यह जानने के लिये हमारे पास Anti A तथा Anti B Agglutinins के पृथक पृथक नमूने होने चाहियें जो Refrigerator में रक्खे जाते हैं। जिस व्यक्ति का ग्रुप जानना हो उसके एक बुन्द रक्त को २-३ सी०सी० नार्मल सेलाइन में मिलाकर उसका ३ प्रतिशतक के लगभग का घोल बना लेना चाहिये या शिरा में से ४ सी०सी० रक्त लेकर ट्यूब में ३० मिनट रख के उसके Clot को तोड़ उसके ४ बुन्द को १ सी०सी० सेलाइन में मिला रक्त कणों का ५ प्र० श० सोल्यूशन बना लें। फिर एक स्लाइड पर A लिख कर उस पर १ बुन्द Anti A Agglutinin की तथा दूसरी पर B लिखकर उस पर एक बुन्द Anti B Agglutinin की पृथक पृथक पिप्पट से डाल देनी चाहिये। अब पृथक पिप्पट से इन पर एक एक बुन्द उपर्युक्त रक्त घोल की डाल के इन्हें हिला के १०-१५ मिनट रख देना चाहिये। अब जो रक्त का घोल ईंटके चूरे के सदृश हो जाय उसके रक्त कणों को Agglutinated. हुआ २ समझना चाहिये।

स्पष्ट है कि यदि दोनों स्लाइडों पर Agglutination हुवा हो तो व्यक्ति को A B वर्ग का समझना चाहिये B स्लाइड या Anti B Serum में Agglutination हो तो

व्यक्ति को B Group का समझना चाहिये। A स्लाइड या Anti A Serum में Agglutination हो तो व्यक्ति को A Group का समझना चाहिये। यदि किसी स्लाइड पर भी Agglutination नहीं हुआ तो व्यक्ति को o (जीरो) ग्रुप का समझना चाहिये।

रक्त कणों को Agglutinate करता है		व्यक्ति जिस वर्ग का है।
Anti B Serum	Anti A Serum	
+	+	A B वर्ग
-	+	A वर्ग
+	-	B वर्ग
-	-	o वर्ग

\+ Agglutination का सूचक चिन्ह।

नोट :- Agglutinogens के दो सब ग्रुप हो जाने से अर्थात् A_1 A_2 दो भेद होने से वस्तुतः ४ वर्गों के स्थान पर ६ वर्ग हो जाते हैं अर्थात् A_1 Agglutinogen श्रेणी के व्यक्ति (२) A_2 Agglutinogen. श्रेणी के व्यक्ति, (३) B Agglutinogen श्रेणी के व्यक्ति, (४) A_1 B Agglutinogen श्रेणी के व्यक्ति, (५) A_2 B Agglutinogen श्रेणी के व्यक्ति, (६) O Agglutinogen. श्रेणी के व्यक्ति। इनके रक्त कणों को ऐसे व्यक्तियों में जिनके प्लाज़मा में इससे विपरीत श्रेणी के Agglutinin Antibody हो प्रविष्ट नहीं करना चाहिये।

Rh. रक्त वर्ग :-
(Rh.Blood Groups):-

१९४० में यह देखा गया कि Rhesus वानर केरक्त को खरगोश के अन्दर प्रविष्ट करने पर उसके रक्त में प्रविष्ट हुए रक्त कणों के विपरीत एक Agglutinin उत्पन्न हो जाता है और यदि खरगोश के इस रक्त को ६० प्र०श० मनुष्यों के रक्त से मिलाया जाय तो उनके रक्त कण Agglutinated हो जाते हैं। जिससे पता लगा कि ६० प्र०श० व्यक्तियों के रक्त के रक्त कणों में Rhesus या Rh. Agglutinogen होता है। इन्हें Rh. Positive तथा शेष १० प्र०श० व्यक्तियों को जिनमें यह Agglutinogen नहीं होता

Rh. Negative कहा जाता है। इन दोनों के Serum में ही इस Agglutinogen के विपरीत पहले से कोई Agglutinin नहीं होता।

हां यदि Rh. Negative व्यक्ति के रक्त में Rh. Positive व्यक्ति के रक्त को Transfusion द्वारा एक बार प्रविष्ट किया जाय तो दिये रक्त के Antigen होने से दिये जाने वाले के रक्त में Anti Rh agglutinins उत्पन्न हो सकते हैं। अब इसके बाद फिर उस दिये जाने वाले व्यक्ति को Rh.Positive रक्त नहीं दिया जा सकता। दिया जायगा तो उसके Agglutinated हो जाने का भय रहता है। अतः लेने वाले के सैलों को Anti-Rh.Serum के साथ मिला के देख लेना चाहिये कि उसे Rh.Positive या Rh.Negative कौन सा रक्त मिलना चाहिये।

इसी तरह यह भी हो सकता है कि यदि पिता तो Rh. Positive. हो और माता Rh.Negative हो तो गर्भस्थ शिशु का रक्त भी Rh.Positive हो जाय और उसके रक्त कणों के विपरीत माता के रक्त में Anti Rh.Agglutinins उत्पन्न हो जाय और वहां से वे गर्भस्थ शिशु के रक्त में भी चले जायें।

ऐसी अवस्था में स्पष्ट है कि यदि उस माता को आवश्यकता पड़ने पर Rh. Positive व्यक्ति का रक्त दे दिया जाय तो उस दिये रक्त के रक्त कण Agglutinated हो जायेंगे। दूसरा यदि माता के अन्दर बने Anti Rh.Agglutinins गर्भस्थ शिशु के रक्त में चले जायें तो उसके रक्त कणों के Agglutinogen से प्रतिक्रिया करके उनको नष्ट कर देंगे। इस रोग को Haemolytic Anaemia of the New Born. या नवजात पाण्डु कहते हैं। अर्थात् ऐसा नवजात शिशु पाण्डु तथा कामला से ग्रस्त होता है तथा उसमें Coomb's Test पाज़िटिव होता है। यह ठीक है कि लगभग १२ विवाहित व्यक्तियों में से १ में पिता Rh.Positive तथा माता Rh. Negative होती है तथापि २५०-५०० प्रसवों में से १ में यह नवजात पाण्डु रोग देखा जाता है। यह भी हो सकता है कि प्रथम सन्तान में या द्वितीय सन्तान में भी यह रोग न हो, आगे होने वाली किसी संतान में हो जाय इस सब व्यतिक्रम के कारण का अभी तक कुछ पता नहीं लगा।

एक बात तो स्पष्ट है कि किसी Rh.Negative स्त्री को जिसके बालक हो चुके हों यदि रक्त देने की आवश्यकता पड़े तो Rh. Negative व्यक्ति का ही रक्त देना चाहिये।

पुराने रक्त हीन, निर्बल हृदय के रोगी को रक्त धीरे धीरे १ घन्टे में १ पाइन्ट की रफ़्तार से थोड़ी मात्रा में ही दिया जाता है। अग्रबाहु की शिरा के पास संज्ञानाशक औषधि डाल के उसे प्रदेश को संज्ञा हीन करके नीहल शिरा में प्रविष्ट करने पर जब उसमें से रक्त बाहर आने लगे उसे Transfusion सेट के साथ जो रोगी से ३-४ फुट ऊपर होता है, जोड़ दिया जाता है।

रक्त दान (Blood Transfusion) की प्रक्रिया :-

रक्त देते समय रोगी को सर्दी लगने लगे या सर्दी लगने के बाद कुछ तापमान भी बढ़ जाय परन्तु ये लक्षण हलके रूप में ही हों तो रक्त दान की गति को मन्द कर देना चाहिये। (१ मि० में १५ बुन्द) साधारण रूप में ये लक्षण Citrate के घोल या उपकरणों के किसी Pyrogen दोष से या रक्त के तापमान के ३५ डिग्री सेन्टि० से कम होने के जाने से होते हैं। पर यदि ये लक्षण ४-५ मिनट के बाद भी जारी रहें तो रक्त दान बन्द कर देना चाहिये। कष्ट साधारण हो तो Dover's Powder •३ ग्राम दे देवें अधिक हो तो मार्फिया १५ मिलि० देदेना चाहिये।

यदि रक्त के देते समय उसकी असात्म्यता Allergy. के लक्षण होने लगें जैसे श्वास कृच्छ्रता, पसलियों पर दर्द, त्वचा पर शीत पित्त के चकत्ते निकलने लगें तो भी रक्त दान बन्द कर देना चाहिये इसके लिये Adrenaline 1/2 सी०सी० त्वचा द्वारा दे के फिर १५ मिलि० Morphine Sulphate दे देना चाहिये। छाती पर दर्द Precordial pain हो तो Oxygen देनी चाहिये।

परन्तु यदि बेमेल रक्त दिया जा रहा हो और दिये हुये रक्त कण रोगी के सीरम में विद्यमान Agglutinin के द्वारा टूटने लगें (Haemolysis होने लगें) तो रोगी को सिर में भारीपन, छाती भर या कटिप्रदेश पर दर्द होने लगता है और वह अधिक बेचैन होने लगता है। सर्दी लगने व श्वास कृच्छ्रता का लक्षण भी होता है। इन लक्षणों के आरम्भ होते ही रक्त दान बन्द कर देना चाहिये। तथा ४ प्र०श० Soda Bicarb के जलीय घोल को १०० सी०सी० की मात्रा में शिरा द्वारा दे के मूत्र को क्षारीय करना चाहिये। मूत्र को क्षारीय रखने के लिय Sodium Cit. तथा Sodium Bicarb. २-३ ग्राम मात्रा में ४-४ घन्टे बाद मुख से भी देना चाहिये। दूसरे दिन इसकी मात्रा कम करके ७ दिन तक मूत्र को क्षारीय ही रखना चाहिये। रक्तकण के अधिक मात्रा में टूटने से एवं Haemoglobin. के अधिक मात्रा में

मूत्र से निकलने तथा उसके मूत्र प्रावििणियों (Tubules) में बैठ जाने से मूत्र की निकासी कम हो जाती है और यूरिया विष संचार (Uraemia) के लक्षण हो सकते हैं। इसकी रोक थाम के लिये मूत्र को पहले ही क्षारीय करना आवश्यक हो जाता है।

आयुर्वेद में रक्त स्राव रोग :-

किसी छिद्र अथवा त्वचा से रक्त स्राव हो जाने को आयुर्वेद में रक्त पित्त रोग कहा गया है। क्योंकि रक्त में पचन कर्म की अधिकता (Haemolysis) से या किसी तीक्ष्ण उष्ण गुण रक्त वाहिनियों पर तीक्ष्ण प्रभाव से रक्त स्राव होता है। इसलिये आयुर्वेद में इस रोग को रक्त पित्त कहा गया है।

श्लैष्मिक रक्त पित्त :-

जब देहाग्नि की मन्दता के कारण कोई आम विष (Metabolic Toxin) उत्पन्न हो जाता है और उसके रक्त वाहिनियों पर दुष्प्रभाव से रक्त स्राव हो जाता है तो इसे श्लैष्मिक रक्त पित्त कहा जाता है।

पैत्तिक रक्त पित्त :-

देहाग्नि की तीक्ष्णता के कारण रक्त आदि धातुओं के अति पचन से यदि कोई तीक्ष्ण उष्ण गुण द्रव्य (Ketabolic Toxin) उत्पन्न हो जाता है और उसके रक्त वाहिनियों पर दुष्प्रभाव से रक्त स्राव होने लगे तो इसे पैत्तिक रक्त पित्त कहा जाता है।

वातिक रक्त पित्त :-

शरीर को निर्बल कर देने वाले कारणों से जब शरीर और रक्त का पोषण नहीं होता अथवा रक्त वाहिनियों की स्वाभाविक प्राण शक्ति क्षीण हो जाती है तो इस कारण रक्त स्राव होने लगे तो ऐसे रक्त पित्त को वातिक रक्त पित्त कहा जाता है। (सु०।उ०।४५।।, तथा ।च०।चि०।४)

रक्त पित्त रोग की चिकित्सा :-

बहुधा यह रोग रक्त में किसी बाह्याभ्यन्तर या कफ पित्त प्रकोप जनित विष द्रव्य के संचय के कारण होता है। अतः इस रोग के लिये दोष शोधन चिकित्सा करनी चाहिये। अर्थात् एक तो प्रारम्भ में रक्त स्राव की उपेक्षा करते हुये दोष को निकलने देना चाहिये। ऊर्ध्व छिद्रों में रक्त जाता हो तो वमन द्वारा तथा

दूसरे निम्न छिद्रों में रक्त जाता हो तो वमन द्वारा तथा ऊर्ध्व छिद्रों

मैं से रक्त जाता हो तो विरेचन चिकित्सा द्वारा शरीर से दोष का निर्हरण करना चाहिये । अर्थात् पित्त दोष या कफ दोष के संचय से उत्पन्न रक्त पित्त रोग में लंघन चिकित्सा या शक्ति हो तो दोष शोधन चिकित्सा करनी चाहिये । पर जब शरीर की अशक्ति या पोषण की कमी के कारण रक्त पित्त रोग हो तो शरीर का संतर्पण ही करना चाहिये। वासा रस से भावित हरीतकी चूर्ण शोधन के लिये उत्तम औषधि है या हरड़ और मुनक्कों का क्वाथ जिसमें वासा भी मिलाया हो, मिश्री मिला कर दिन में दो, तीन बार देना चाहिये । परन्तु यदि रोगी निर्बल हो अथवा रक्त स्राव वात प्रकोप जनित हो तो शीतल गुण तर्पण चिकित्सा करनी चाहिये अर्थात् वात प्रधान रक्त पित्त रोगी को मुलहठी, अंजीर, मुनक्का, खजूर, शतावरी, गोखरू, या लघु पंचमूल आदि किसी से पकाया हुआ दूध मिश्री मिलाकर दिन में कई बार पिलाना चाहिये तथा शामक औषधियों का ही प्रयोग करना चाहिये । वातिक रक्त पित्त के लिये शतावरी घृत, दूध, खजूर, मुनक्के आदि द्वारा शरीर का तर्पण करना चाहिये । क्षय जनित रक्त पित्त में इलायची तथा वंश लोचन आधा-आधा माशा मिश्री, आधा तौला के साथ दिन में चार-छ: बार देना चाहिये ।

पैत्तिक तथा श्लैष्मिक रक्त पित्त के लिये शोधन के अनन्तर रक्त पित्त शामक औषधियों का प्रयोग करना चाहिये । जैसे प्रारम्भ में तो त्रिफला और अमलतास का क्वाथ, मधु डालकर पिलाना चाहिये और फिर दूर्वादि घृत, (दूर्वा रस १६ भाग, घृत ४ भाग, तण्डुलोदक, अजाक्षीर १६-१६ भाग, नीलोफर, उशीर, श्वेत चन्दन, चन्दन लाल, मुलहठी, पद्माक, मंजिष्ठा, द्राक्षा, महुआ, मिलित १ भाग) या वासा घृत, या वासा खण्ड कूष्माण्ड, या उशीरासव दो तो०, या पीपल की लाख को धो साफ कर बराबर मिश्री के साथ मिला बनाया चूर्ण ६ माशा की मात्रा में या मुलहठी ३ माशा, मुनक्का १२ दाने, का एक पाव जल में बना क्वाथ मिश्री डालकर, या स्वर्ण गैरिक, वंशलोचन, इलायची छोटी, नाग केसर, कहरवा, संग जराहत, समान समान मिलाकर ६ माशे की मात्रा में या बोल पर्पटी १ तोला, शुक्ति, शंख, प्रवाल, मुक्ता भस्म दो दो माशे, गैरिक ६ माशे, कहरवा ६ माशे, मिलाकर इसकी दो माशे की मात्रा या केवल बोल पर्पटी की १-२ रत्ती की मात्रा वासा, द्राक्षा और हरितकी के क्वाथ के साथ या दूर्वा स्वरस के साथ जब तक रक्त बन्द न हो तीन तीन घन्टे पर देते रहना चाहिये । रक्त स्राव के लिये अजायफूत के रस या सुखाये हरे अजायफूत के पत्तों के सुंघाने का भी विधान किया गया है ।

(सु०।उ०।४५।।,।।च०।चि०।४।।,।।चक्रदत्त,यो०र०

